ब्रज-साहित्य-माला स० १०

सूर-सारावली

उपलब्ध प्रतियों के आधार पर संपादित,
पाठांतर और विस्तृत भूमिका सहित.



संपादक और भूमिका-लेखक :

प्रभुदयाल मीतल

प्रकाशक :

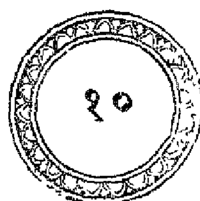
अग्रवाल प्रेस, मथुरा

मूल्य ३॥)

प्रथम संस्करण

फाल्गुन शु० २ सं० २०१८ वि०

ब्रज-साहित्य-माला



मुद्रक, प्रकाशक :

त्रिलोकीनाथ मीतल, भारत प्रिन्टर्स, मीतल-निवास, मथुरा।

प्राक्कथन

(i)

सूर-सारावली का यह संस्करण उपलब्ध प्रतियों के आधार पर संपादित होकर पाठांतर एवं विस्तृत भूमिका सहित हिंदी साहित्य में प्रथम बार प्रकाशित हो रहा है। अपनी बहुत दिनो की इच्छा को इस प्रकार पूर्ण होते देख कर हमको स्वभावतः ही हर्ष है। हमें आशा हैं, सूर-साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान और प्रेमी पाठक गण भी इसका स्वागत करेंगे।

इसकी विस्तृत भूमिका में हमने आधार-प्रतियों की आवश्यक विवेचना करने के अनंतर इसकी प्रामाणिकता पर विस्तार से विचार किया है। हमने इसके बहिरंग और अंतरंग की सूक्ष्म परीक्षा की है तथा इसकी रचना के हेतु, इसकी भाषा-शैली और सांप्रदायिक भावना का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। इसके उपरांत हमारा निष्कर्ष है कि यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। सारावली के छंदो से सूरसागर के सैकड़ों पदों का मिलान करने पर दोनो में जो अद्भुत समानता दिखलाई देती है, उससे हमारे निष्कर्ष की पुष्टि होती है। सूर-साहित्य के जो विद्वान सारावली को सूरदास की प्रामाणिक रचना मानने में संदेह करते है, उनसे हमारा निवेदन है कि वे अपने पूर्वाग्रह को छोडकर इसकी भूमिका पढें और अपने मत पर पुनर्विचार करें। यदि फिर भी वे इसे अष्टछापी सूरदास की रचना नही समझें, तो उन्हें बतलाना होगा कि आखिर इसका रचयिता कौन सा सूरदास है?

इस रचना के अध्ययन से ज्ञात होता है, इसमें पुष्टि संप्रदाय के सिद्धांतों और उसकी मान्यताओं का अनुसरण किया गया है। इसमें उक्त संप्रदाय की सेवा-विधि का भी सांगोपांग कथन है। इससे सिद्ध होता है, इसका रचयिता वल्लभ संप्रदाय का मर्मज्ञ विद्वान है। उसकी नाम-छाप भी वही हैं, जो अष्टछापी सूरदास की हैं और वह उन्ही की तरह वल्लभाचार्य जी को अपना गुरु और उनके द्वारा अपने भ्रमो का निवारण होना बतलाता है। वल्लभाचार्य जी के शिष्य-सेवकों का वृत्तांत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' मे है, जिसमें एक नाम के कई व्यक्तियों का भी उल्लेख हुआ है; किंतु उसमे अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त किसी अन्य सूरदास का नामोल्लेख नहीं है। वल्लभ संप्रदाय के समकालीन साहित्य से भी किसी अन्य सूरदास का अस्तित्व सिद्ध नही होता है।

अष्टछापी सूरदास के समकालीन सूरदास नामक जिन दो व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है, उनमें से एक संडीले के अमीन सूरदास मदनमोहन थे और दूसरे अकबरी दरबार के गायक बाबा रामदास के पुत्र सूरदास थे। वे दोनों ही न तो वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे और न उनके संप्रदाय के अनुयायी थे। उनके नाम की छाप भी पृथक् हैं, अतः उनको इसका रचयिता मानने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है। ऐसी दशा में सारावली को अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त किसी अन्य सूरदास की रचना बतलाना सर्वथा भ्रमात्मक कथन है। इस रचना के संबंध में कुछ समय से जो संदेह उत्पन्न कर दिया गया है, आशा है वह अब दूर हो सकेगा।

अपने कथन की पुष्टि में हमने सूर-साहित्य के जिन विद्वानों के मत की आलोचना की है, आशा है, सत्यान्वेषण के प्रयास के लिए वे हमें क्षमा करेंगे। 'संगीत रागकल्पद्रुम' की प्रति का अवलोकन वृंदाबन निवासी गो० दामोदराचार्य जी की कृपा से संभव हो सका है, अतः हम उनके आभारी हैं।

मीतल निवास, मथुरा
फाल्गुन सं० २०१४

—प्रभुदयाल मीतल

विषय-सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या

सारावली—

सारावली के प्रसंगों का छंद-परिमाण ।

प्रसंग	छंदों का क्रम		छंद संख्या
१—होली-खेल का रूपक—	१ से ४ तक	...	४
२—सृष्टि-विस्तार—	५ से १० तक		
१. ब्रह्मा की उत्पत्ति—	११ से १६ तक	...	२१
२. ब्रह्मा द्वारा सृष्टि-रचना	१७से२५तक		
३—होली-खेल के रूप में देवासुर-संग्राम	२६ से ३६ तक	...	११
४—चौबीस अवतार—	३७ से ३६४ तक		
१. ध्रुव की कथा—	१२		
२. प्रह्लाद की कथा—	३५		
३. रामचरित्र—	१७७	... ...	३२८
४. बलि की कथा—	१७		
५. अन्य अवतार—	८७		
५—श्रीकृष्ण-चरित्र	३६५ से ८६७ तक		
१. जन्मादि—	२४		
२. ब्रज-लीला—	१०२		
३. मथुरा-लीला—	१३०	... ...	५०३
४. द्वारका लीला—	२४७		८६७
६—राधा-कृष्ण का नित्य विहार	८६८ से ११०७ तक		
१. ब्रज की निकुंज लीला—	१५६		
२. बसंत खेल—	२७	... ...	२४०
३. होलिकोत्सव और उपसंहार—	५७		
		कुल जोड़—	११०७

भूमिका



'सूर-सारावली' नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ और श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित सूरसागर के संस्करणों के आरंभ में छपी हुई है। इनसे पहले वह श्री कृष्णानंद जी व्यास द्वारा संकलित सुप्रसिद्ध संगीत ग्रंथ 'राग-कल्पद्रुम' में सूरदास के पदों के साथ छापी गई थी। श्री वेंकटेश्वर प्रेस ने सूरसागर के साथ छपी हुई 'सारावली' को पृथक् रूप में भी प्रकाशित किया था। इस समय रागकल्पद्रुम में छपी हुई और श्री वेंकटेश्वर प्रेस द्वारा स्वतंत्र रूप से प्रकाशित सारावली की प्रतियाँ तो अप्राप्य ही है, लखनऊ और बंबई में मुद्रित सूरसागर के संस्करणों के भी दुष्प्राप्य होने के कारण, यह रचना सरलता पूर्वक उपलब्ध नहीं होती है।

जब से विद्वानों का ध्यान सूर-साहित्य के अध्ययन की ओर गया है, तब से 'सारावली' अष्टछापी सूरदास की ही रचना मानी गई है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने सूरदास विषयक प्रबंध में सर्व प्रथम इसकी प्रामाणिकता में संदेह प्रकट किया था[1]। तब से अब तक सूर-साहित्य के अनेक विद्वान इसके पक्ष और विपक्ष में अपना मत प्रकट कर चुके है। मैंने अपने 'सूर-निर्णय' ग्रंथ में इस पर विस्तार पूर्वक विचार किया है। डा० वर्मा के मत की विस्तृत समीक्षा करते हुए मैने 'सारावली' की प्रामाणिकता सिद्ध करने की चेष्टा की है[2]।

प्राचीन-प्रतियों की खोज—

'सूर-निर्णय' की रचना के पश्चात् मेरा विचार 'सारावली' का एक सुसंपादित संस्करण निकालने का हुआ। इसके लिए विभिन्न प्राचीन प्रतियों का अध्ययन करना आवश्यक था, ताकि इसका शुद्ध पाठ निश्चित किया जा सके। प्रामाणिक हस्त लिखित प्रतियाँ प्राप्त करने की आशा से अनेक प्राचीन पुस्तकालयों को खोजा गया और वल्लभ संप्रदाय तथा सूर-साहित्य के विविध विद्वानों से पत्र-व्यवहार किया गया। इस खोज-ढूँढ़ में कई वर्ष निकल गये, किंतु बहुत चेष्टा करने पर भी इसकी कोई प्राचीन हस्त लिखित प्रति उपलब्ध

१ सूरदास पृ० ५८ से ८३ तक

नहीं हुई। राजस्थान के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री अगरचंद जी नाहटा से ज्ञात हुआ कि उदयपुर के सरस्वती भवन पुस्तकालय में सूरसारावली की एक प्राचीन हस्त लिखित प्रति है। इसके लिए सरस्वती भवन के संचालक श्री मोतीलाल जी मेनारिया को उक्त प्रति के कुछ अंश और उसकी पुष्पिका की प्रतिलिपि भेजने को लिखा गया। श्री मेनारिया जी ने अपने दिनांक २८–८–५२ के पत्र में मुझे सूचित किया—

"आपके लिखे अनुसार यहाँ की सूर-सारावली की हस्त लिखित प्रति में से तीन पद और पुष्पिका की नकल भेज रहा हूँ। यह प्रति सं० १७७५ की लिखी हुई है और इसमें तीन सौ से कुछ ऊपर पद है। इसके आरंभ के आठ पत्र फट गये है, जिनके साथ चौदह पद भी चले गये है। पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री सूर-सारावली कवि श्री सूरदास विरचिते विरह राग वर्णनं सं० १७७५ वर्षे वेसाख वदि १४ दिने व्यलिखन्मुनि रूप सौभाग्य रामपुरा मध्ये ॥"

इस पुस्तक की पुष्पिका से जहाँ इतनी प्राचीन प्रति के उपलब्ध होने से प्रसन्नता हुई, वहाँ इसके उद्धृत पदों से उतनी ही निराशा हुई। वास्तव में यह सूरदास के पदों का एक प्राचीन संकलन है, 'सूर-सारावली' नहीं। सूरदास के पदों के किसी बडे संग्रह में से उसके सार रूप इन पदों के संकलन का नाम 'सूर सारावली' रख दिया गया था।

प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों से निराशा होने पर मुद्रित प्रतियों का अन्वेषण किया गया। उपलब्ध मुद्रित प्रतियों में सूर-सारावली कहाँ से ली गई और उसकी कोई मूल प्रति इस समय मिल सकती है या नहीं; इसकी खोज करना आरंभ किया। नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ और श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई के कार्यालयों में सूरसागर के मूल सामग्री के साथ सारावली की भी कोई प्रति हो सकती है, इस आशा से उनके व्यवस्थापकों को लिखा गया; किंतु दोनों ही स्थानों से उत्तर मिला कि वहाँ पर ऐसी कोई प्रति नहीं है।

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ का सूरसागर श्री कृष्णानंद व्यास कृत 'रागकल्पद्रुम' की एक जिल्द का पुनर्मुद्रित रूप है, अत: उसमें प्रकाशित सारावली भी 'रागकल्पद्रुम' से ही ली गई है। इसका उल्लेख लखनऊ के सूरसागर में भी हुआ है। ऐसी दशा में उक्त सूरसागर के संपादकों द्वारा सारा-

वली की किसी प्राचीन हस्तलिखित प्रति के देखे जाने की आशा करना ही व्यर्थ था। श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बंबई के सूरसागर का संपादन श्री राधाकृष्णदासजी ने किया था। उन्होंने 'सारावली' कहाँ से प्राप्त की, इसकी सूचना उन्होंने अपने ग्रंथ में नहीं दी। श्रीजगन्नाथदास जी 'रत्नाकर' के पास सूरसागर की प्रचुर सामग्री के साथ ही साथ सारावली की भी एक प्रति थी, जिसके नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में होने की सूचना मिली थी। इस संबंध में रत्नाकर जी कृत सूरसागर के संपादक श्री नंददुलारे जी वाजपेयी और नागरी प्रचारिणी सभा के मंत्री जी को लिखा गया। उन्होंने जो सूचनाएँ दी, वे इस प्रकार हैं—

श्री नंददुलारे जी वाजपेयी ने अपने दिनांक १८–१–५३ के पत्र में लिखा था—

"जहाँ तक मुझे स्मरण है, सूर-सारावली की प्राचीन प्रति भारतेन्दु हरिश्चंद्र के पुस्तकालय में थी, जहाँ से लेकर श्री राधाकृष्णदास ने वेंकटेश्वर प्रेस वाली मुद्रित प्रति में उपयोग किया। राधाकृष्णदास जी की लिखी सूर-सागर वाली भूमिका में कदाचित् इसका उल्लेख भी किया गया है।"

नागरी प्रचारिणी सभा काशी के तत्कालीन प्रधान मंत्री श्री राम-नारायण जी मिश्र ने अपने दिनांक ६–६–५२ के पत्र में लिखा था—

"सूरसागर सारावली की जो हस्त लिखित प्रति यहाँ है, उसे रत्नाकर जी ने किस प्रति से नकल कराया था, इसका उल्लेख नहीं है। यह प्रति पूरी भी नहीं है, किसी कारण अधूरी रह गई है। इसमें द्विपदियों की अंतिम संख्या केवल २०५ है। २०६ की केवल एक पंक्ति लिखी है। वेंकटेश्वर प्रेस के सूरसागर की सारावली का यह दशमांश भी नहीं है। उसकी संख्या ११०७ है। ये २०५ पद अवश्य दोनों में प्रायः समान है, पर पाठभेद वर्तमान है। वेंकटेश्वर प्रेस वाले से इसका पाठ अच्छा अवश्य जान पड़ता है। छंद की टूटें और संस्कृति-करण कम है। पर यह प्रति वेंकटेश्वर वाली का संशोधन नहीं जान पड़ती; क्यों कि यत्र-तत्र पाठ की गड़बड़ी इसमें मालूम होती है।...... हस्त लिखित प्रति में अपपाठ बहुत कम स्थलों में जान पड़ते हैं।"

उपर्युक्त सूचना के अनुसार भारतेन्दु जी वाली जिस प्रति का उपयोग राधाकृष्णदास जी ने किया था, उससे रत्नाकर जी वाली प्रति भिन्न जान पड़ती है। इस प्रकार तीन प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों के सूत्र उपलब्ध हुए—

१. रागकल्पद्रुम और लखनऊ के सूरसागर में प्रकाशित सारावली की मूल प्रति।

२. भारतेन्दु जी की प्रति अर्थात् बंबई के सूरसागर में प्रकाशित सारावली की मूल प्रति।

३. रत्नाकरजी द्वारा नकल कराई हुई अधूरी सारावली की मूल प्रति।

खेद है, ये तीनों ही मूल प्रतियाँ अनेक चेष्टाएँ करने भी प्राप्त न हो सकीं। रागकल्पद्रुम के संपादन की मूल सामग्री कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में विद्यमान होने की सूचना मिली थी। इसके लिए मैं स्वयं कलकत्ता गया। वहाँ पर श्री कृष्णानंद व्यास द्वारा संपादित रागकल्पद्रुम की वह जिल्द अवश्य मिली, जिसमें 'सारावली' प्रकाशित हुई थी; किंतु उसकी मूल हस्त लिखित प्रति नहीं मिली। भारतेन्दु जी के पुस्तकालय में तलाश कराया गया, किंतु उनकी प्रति भी उपलब्ध नहीं हुई। रत्नाकर जी की अधूरी प्रति नागरी प्रचारिणी सभा में है; किंतु जिस प्रति से उसकी नकल हुई थी, उसके विषय में कोई सूचना नहीं मिली।

रागकल्पद्रुम में प्रकाशित सारावली की कोई मूल हस्त लिखित प्रति अवश्य होनी चाहिये, जो इस समय नहीं मिल रही है। ऐसा अनुमान होता है. भारतेन्दु जी और रत्नाकर जी की प्रतियाँ शायद रागकल्पद्रुम की सारावली से ही नकल की गई हों और उनकी पृथक् मूल हस्त लिखित प्रतियाँ न हों। कम से कम रत्नाकर जी की अधूरी प्रति तो रागकल्पद्रुम की ही नकल मालूम होती है। ऐसी दशा में प्राचीन हस्त लिखित प्रतियों के अधिक संख्या में प्राप्त होने की आशा बहुत कम है।

गुजरात के भक्त-कवि दयाराम जी ने सं० १८८० में सारावली का गुजराती भाषा में पद्यानुवाद किया था, जो 'श्री दयाराम भाई स्मारक समिति, डभोई' द्वारा प्रकाशित हुआ है। इस अनुवाद से ज्ञात होता है कि सं० १८८० में 'सारावली' उसी रूप में प्रसिद्ध थी, जिस रूप में वह लखनऊ और बंबई के सूरसागर की प्रतियों में छपी हुई मिलती है। यद्यपि 'सारावली' की कोई प्राचीन हस्त लिखित प्रति उपलब्ध नहीं हुई है, तथापि इस अनुवाद से उसकी १५०-२०० वर्ष तक की परंपरा मिलजाती है। इससे आशा होती है कि गुजरात और सौराष्ट्र के बल्लभ संप्रदायी प्राचीन पुस्तकालयों में शायद इसकी दो-एक प्राचीन हस्त लिखित प्रतियाँ मिल सकें; यद्यपि वे अभी तक प्राप्त नहीं हुई हैं।

जब तक हस्त लिखित प्राचीन प्रतियाँ प्राप्त न हों, तब तक उपलब्ध मुद्रित प्रतियों से ही इसका पाठ निश्चित किया जा सकता है। मुद्रित प्रतियों में सबसे प्राचीन दयाराम कृत गुजराती अनुवाद है। उसके बाद रागकल्पद्रुम और फिर लखनऊ तथा बंबई के सूर-सागर हैं। इन्हीं चार प्रतियों के आधार पर प्रस्तुत पुस्तक का पाठ निश्चित किया गया है। इस पुस्तक का मूल पाठ अधिकतर 'रागकल्पद्रुम' के अनुसार है। जहाँ उसके पाठ में कुछ गड़बड़ मालूम हुई है, वहाँ अन्य प्रतियों का पाठ स्वीकार किया गया है, किंतु उसका मिलान गुजराती अनुवाद से कर लिया गया है। अन्य प्रतियों का वही पाठ लिया गया है, जो गुजराती अनुवाद के अनुकूल दिखाई दिया है। पाद-टिप्पणियों में यथा स्थान पाठांतर का उल्लेख कर दिया गया है।

आधार प्रतियों का परिचय—

यहाँ पर उन प्रतियों का परिचयात्मक विवरण दिया जाता है, जिसका उपयोग इसके पाठ के लिए किया गया है—

१. सारावली का गुजराती अनुवाद—गुजरात के सुप्रसिद्ध भक्त कवि दयाशंकर उपनाम दयाराम भाई ने पुष्टि संप्रदायी गोस्वामी विट्ठलेश जी के आदेशानुसार इसकी रचना सं० १८८० के श्रावण मास की द्वादशी, रविवार को वैष्णवजनों के उपकारार्थ और भगवान् श्रीकृष्ण के प्रीत्यर्थ की थी। इसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है—

विट्ठल कुल दीपक कहे, कविवर कीजे काम।
वैष्णव जन उपकृत करो, रीझवो सुंदर श्याम॥
श्री नर्मदापुरी चंडिपुरी मां, श्री शेषशायी निवास।
त्यांनो निवासी कविजन 'दयो', श्री राधाकृष्ण नो दास॥
श्रीमत भट साठोदरा द्विज, छे ज्ञाति नागर वंश।
प्रभुराम पुत्र कवि दयाशंकर छे नाम, श्री हरि अंश॥
शक अष्टादश अंशी, श्रावणी द्वादशी, रविवार।
वर वसंत पक्षोत्सव वासर, सारावलि सरस विचार[१]॥

१. दयाराम जी के १७२ वें जन्मोत्सव पर 'भक्तकवि श्री दयाराम भाई स्मारक समिति, डभोई' द्वारा सं० २००५ में प्रकाशित संस्करण से।

दयाराम भाई का जन्म सं० १८३३ में और देहावसान सं० १९०९ मे था। उन्होंने गुजराती के अतिरिक्त ब्रजभाषा में भी अनेक भक्ति-काव्यो की रचना की है। 'सारावली' का अनुवाद उन्होंने अपनी ४७ वर्ष की आयु मे किया था। यह अनुवाद मूल ग्रंथ का पंक्तिबद्ध ही नहीं, शब्दश: भी किया गया है। इसमें संज्ञा शब्द प्राय: ब्रजभाषा के हैं, केवल क्रियाओं का गुजराती रूप रखा गया है। इसमें आद्योपांत 'सारावली' का वही रूप मिलता है, जो लखनऊ और बंबई के सूरसागर में छपी हुई 'सारावली' का है। इसमे भी मूल के अनुसार ११०७ द्वैतुकी पद हैं। अनुवादक ने पुस्तक के आरंभ और अंत में अपनी ओर से २० पद और बढ़ाये हैं। इसका उल्लेख उन्होंने इस प्रकार किया है—

संख्या अेक सहस्र शत सप्तनी, भाषा मांही प्रमाण।
वीश पद्य वधारेनां करी, रच्यो ग्रंथ भू-भाण॥

इस अनुवाद से सारावली के वर्तमान रूप की ही पुष्टि नहीं होती है, वरन् उसकी १५०-२०० वर्ष तक की पुरानी परंपरा भी प्राप्त होती है। इससे ज्ञात होता है, इस रचना का प्रचार उस समय गुजरात जैसे सुदूर प्रांत में भी था। वहाँ के पुष्टि संप्रदायी भक्तों में यह अत्यंत आदरणीय समझी जाती थी, तभी तो इसके अनुवाद कराने की आवश्यकता समझी गई थी।

२. रागकल्पद्रुम में प्रकाशित सारावली — रागकल्पद्रुम उत्तर भारतीय संगीत का महान् ग्रंथ है। इसकी रचना श्री कृष्णानंद जी व्यास ने प्रचुर परिश्रम और अर्थ-व्यय के उपरांत की थी। व्यास जी का जन्म सं० १८५१ में और देहावसान सं० १९४५ के लगभग हुआ था। इस प्रकार उन्होंने प्राय: ९४ वर्ष की दीर्घायु प्राप्त की थी। अपने जीवन के कम से कम ७० वर्ष उन्होंने संगीत की साधना में लगाये थे! वे महान् संगीतोद्धारक और संगीत-शास्त्री होने के साथ ही साथ उच्च कोटि के गायक भी थे। उन्होंने प्राय: ३२ वर्ष तक समस्त भारत की यात्रा की थी। अपनी दीर्घकालीन यात्रा में उन्होंने देश के सैकड़ों लब्ध प्रतिष्ठ संगीतज्ञों से भेंट की और अनेक दुष्प्राप्य संगीत ग्रंथों का अध्ययन किया।

जिस समय दयाराम भाई सारावली का गुजराती में अनुवाद कर रहे थे, उस समय कृष्णानंद जी देशव्यापी यात्रा करते हुए संगीत-सामग्री का सकलन कर रहे थे। ऐसा मालूम होता है, कृष्णानंद जी अपनी यात्रा मे

दयाराम भाई से नहीं मिले थे। दयाराम जी के पास 'सारावली' की जो प्रति थी, उसे कृष्णानंद जी ने नहीं देखा था। अनुमान तो यह होता है कि दोनों में कदाचित परिचय भी नहीं था; क्योंकि कृष्णानंद जी ने रागकल्पद्रुम में जहाँ सैकड़ों कवियों की रचनाओं का संकलन किया है, वहाँ उन्होंने दयाराम भाई का नामोल्लेख तक नहीं किया है।

अपनी यात्रा में उन्होंने विभिन्न भाषाओं के कई लाख गान एकत्र किये। इस विशाल संगीत-सामग्री को लेकर वे कलकत्ता में जाकर बस गये। वहाँ पर उन्होंने एक मुद्रणालय स्थापित कर 'रागकल्पद्रुम' का प्रकाशन आरंभ किया। यह ग्रंथ सं० १८९८ से १९०६ तक अनेक छोटी-छोटी जिल्दों में प्रकाशित होता रहा। इसका बंगला भाग सं० १९०३ में प्रकाशित हुआ। बाद में उन समस्त जिल्दों को बड़े-बड़े ४ खंडों में एकत्र कर लिया गया, जिनका मूल्य उस समय १००) रखा गया था। उसके चतुर्थ खंड में सूरदास सहित अनेक भक्त गायकों के कीर्तन के पद, सूरसागर और सारावली का संकलन किया गया था।

जिस समय यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ, उस समय देश-विदेश में इसकी धूम मच गई थी। इसकी समस्त प्रतियाँ हाथों हाथ बिक गईं और यह महत्व-पूर्ण ग्रंथ शीघ्र ही अप्राप्य हो गया। सं० १९४० में जब सर जार्ज ग्रियर्सन अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'दि माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिंदुस्तान' की रचना कर रहे थे, तब यह ग्रंथ अप्राप्य हो चुका था। बड़ी चेष्टा करने पर उनको इसकी एक प्रति 'मेटकाफ हाल लाइब्रेरी' में देखने को मिली थी, जिसके लिए उन्हें उक्त लायब्रेरी को चंदा के भी १००) से अधिक देना पड़ा था। विश्वकोष संपादक श्री नगेन्द्रनाथ वसु ने इसकी स्फुट जिल्दों का बड़ी कठिनता से प्राप्त कर बंगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, द्वारा तीन खंडों में प्रकाशित कराया था। प्रथम खंड सं० १९७१ में और द्वितीय खंड सं० १९७३ में प्रकाशित हुए थे। उनमें अनेक भाषाओं के सहस्त्रों गान नागरी लिपि में सकलित किये गये थे। इसके तृतीय खंड में बंगला गान बंगला अक्षरों में छापे गये। इसका चतुर्थ खंड, जिसमें 'सारावली' थी, प्रकाशित नहीं हो सका। यह खंड सं० १९२० में नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ द्वारा सूरसागर के नाम से छप चुका था। शायद इसी लिए इसे बंगीय साहित्य परिषद् ने प्रकाशित करना आवश्यक नहीं समझा।

कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में 'रागकल्पद्रुम' के आरंभिक संस्करण की एक प्रति है । इसमें सं० १८९८ से १९०० तक की मुद्रित कई जिल्दें सम्मिलित हैं । इस प्रति में बडी साँची के ३४४ पृष्ठ हैं । मध्य के १६४ पृष्ठों मे नित्य कीर्तन के पद हैं । उनके बाद 'सूरसागर सारावली' और सूरसागर के पद हैं । 'रागकल्पद्रुम' का यह भाग सं० १८९९ के चैत्र मास में प्रकाशित हुआ था । इसी भाग की एक प्रति वृंदावन में गोस्वामी दामोदरचार्य जी के पास है । इसमें 'सूरसागर सारावली' वाला अंश बडी साँची के ४१ पृष्ठों में है और वह स० १८९८ की कार्तिक शु० ८ रविवार को प्रकाशित हुआ था । इससे ज्ञात होता है कि वृंदावन वाली प्रति कलकत्ता वाली प्रति से पूर्व प्रकाशित हुई थी । हमने इस पुस्तक के संपादन में वृंदावन वाली प्रति का ही उपयोग किया है । इसमें 'सारावली' का आरंभ इस प्रकार हुआ है—

"अथ श्री सूरदास जी कृत सूरसागर सारावली तथा सवा लाख पद के सूचीपत्र श्री कृष्णानंद व्यास देव रागसागर संग्रह कृत तथा रागकल्पद्रुम लिख्यते" ।

इसके बाद 'बंदौ श्री हरिपद सुखदाई' की टेक से मंगलाचरण का पद और उसके बाद 'खेलत यहि बिधि हरि होरी हो होरी हो, बेद विदित यह बात' की टेक से 'सारावली' का आरंभ किया गया है। 'सारावली' के ११०७ द्वतुकी पद इस प्रति के ४०३ पृष्ठों मे मुद्रित हुए है । अंत की पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति सूरदास जी कृत संवत्सर लीला तथा सूरसारावली तथा सवा लाख पद के सूचीपत्र समाप्तम् ।"

इसके बाद 'हरि हरि हरि हरि सुमरन करो' की टेक से मंगलाचरण के बाद राजा परीक्षत का वैराग्य, उनको उपदेश देने के लिए मुनियों एवं शुकदेव जी का आगमन, भगवत नाम महिमा, व्यास संवाद, व्यास अवतार वर्णन तथा सूरदास के कतिपय पद हैं । इनके बाद 'सेवा फल' है । उसके बाद 'भरोसौ दृढ़ इन चरनन केरौ' की टेक के पद पर यह प्रसंग पृष्ठ ४४ में समाप्त हुआ है । सबके अंत में पुनः इस प्रकार की पुष्पिका है—

"इति श्री रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम सूरसागरस्य सूरसारावली समाप्तम् ।। संवत् १८९८ कार्तिक शुदी ८ रवौ श्री कृष्णानंद व्यास देव रागसागर स्येदं मुद्रांकित ।।"

३. **लखनऊ के सूरसागर में प्रकाशित सारावली** — नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ का सूरसागर वस्तुतः 'रागकल्पद्रुम' के कतिपय अंशों का ही पुनर्मुद्रित रूप है। इसका उल्लेख उक्त ग्रंथ में भी हुआ है। ऐसी दशा में जो विद्वान लखनऊ संस्करण को सूरसागर का सर्व प्रथम मुद्रित रूप मानते है, वे कितने भ्रम में हैं, यह लिखने की आवश्यकता नहीं है। इसका प्रथम संस्करण सं० १९२० (सन् १८६३) में अयोध्या-नरेश महाराज मानसिंह उपनाम 'द्विजदेव' की अनुमति से मुंशी जमुनाप्रसाद और पं० कालीचरण द्वारा संशोधित करा कर प्रकाशित किया गया। यह संस्करण लीथो अक्षरों में छपा था। इसका दूसरा संस्करण सं० १९३१ (नवम्बर सन् १८७४) में पं० प्यारेलाल और पं० रामरत्न वाजपेयी द्वारा शुद्ध करा कर पुराने कलकतिया अक्षरों मे छापा गया। इस संस्करण की एक प्रति मथुरा पुरातत्व संग्रहालय में है। इसका आठवाँ संस्करण सं० १९५९ में छपा था, जिसकी एक प्रति कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में है।

सूरसागर के इस संस्करण में सर्व प्रथम सारावली, फिर सूरदास सहित अनेक कवियों के रचे हुए कीर्तन के पद, उनके बाद सूरदास के लीला विषयक पदों का संकलन है। इसमें सारावली का आद्योपांत वही क्रम है, जो 'रागकल्पद्रुम' के विवरण में बतलाया जा चुका है। इसमें सारावली संबंधी सामग्री रागकल्पद्रुम की तरह ४४ पृष्ठों में समाप्त हुई है। अंतर केवल इतना है कि रागकल्पद्रुम में जो मुद्रण-काल का उल्लेख है, वह इसमें नहीं है।

४. **बंबई के सूरसागर में प्रकाशित सारावली**—श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई का यह प्रसिद्ध संस्करण सूरसागर की आवश्यकता को तब तक पूरा करता रहा, जब तक नागरी प्रचारिणी सभा का संस्करण प्रकाशित नहीं हुआ। इसका संपादन श्री राधाकृष्णदास जी ने किया था। इसका प्रथम संस्करण सं० १९५३ में प्रकाशित हुआ। राधाकृष्णदास जी को सूरसागर की प्रामाणिक प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हुई थीं, अतः उसके संपादन से स्वयं उनको भी पर्याप्त संतोष नहीं हुआ। उन्होंने कुछ नवीन पदों को प्रथम संस्करण के अंत में ही छपवा दिया था। इसके बाद उन्होंने उसकी अशुद्धियों की विस्तृत सूची बना कर भेजी, जिसके अनुसार दूसरा संस्करण संशोधित रूप में प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् इसके कई संस्करण हुए, जिनमें श्री वेंकटेश्वर प्रेस के प्रूफ-शोधकों द्वारा भी पर्याप्त संशोधन किया गया।

लखनऊ संस्करण के समान इस सूरसागर के आरंभ में भी सारावली मुद्रित हुई है। मुद्रित प्रतियों के क्रम में बंबई सारावली अंतिम है, किंतु डा० हरिवंशलाल जी ने इसको सबसे पहले छपी हुई बतलाया है[1]। उनका यह कथन ठीक नहीं है। बंबई-सारावली का पाठ रागकल्पद्रुम और लखनऊ की सारावली के पाठों से कुछ भिन्न है। इसके पाठ की उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें संस्कृतीकरण अधिक है। ऐसा ज्ञात होता है श्री वेंकटेश्वर प्रेस के प्रूफ-शोधकों ने इसे 'शुद्ध' करने की सनक में ब्रजभाषा के सूर-सम्मत शब्दों का भी संस्कृतीकरण कर डाला है! इस प्रकार उन्होंने इसे शुद्ध करने की अपेक्षा वस्तुतः अशुद्ध ही किया है। इस प्रकार की 'शुद्धि' भारतेन्दु जी अथवा राधाकृष्णदास जी ने नहीं की होगी; क्यों कि वे ब्रजभाषा के विद्वान थे।

हमारे पास बंबई के सूरसागर का जो संस्करण है, वह सं० १९९१ का है। इससे पूर्व इसके कई संस्करण हुए थे, जिनमें पर्याप्त संशोधन हुआ होगा। इसमें 'सारावली' का आरंभ और अंत इस प्रकार हुआ है—

"अथ श्री सूरदास जी रचित सूरसागर सारावली तथा सवालाख पदो का सूचीपत्र।"

"इति श्री सूरदास जी कृत संवत्सर लीला तथा सवालाख पदों का सूचीपत्र समाप्त।"

आधार-प्रतियों का विवेचन—

'सारावली' की चारों आधार-प्रतियों के परिचयात्मक विवरण से कुछ ऐसी बातें ज्ञात होती हैं, जिनका विवेचन करना आवश्यक है। पहली बात यह है, दयाराम भाई ने जिस हस्त लिखित प्रति से सारावली का गुजराती अनुवाद किया था, उसका उपयोग कृष्णानंद जी व्यास ने नहीं किया। शायद वे दयाराम जी और उनकी प्रति से परिचित भी नहीं थे। कृष्णानद जी के पास सारावली की अन्य हस्त लिखित प्रति थी, जिसे उन्होंने रागकल्पद्रुम मे सूरदास जी की रचनाओं के साथ प्रकाशित किया था। रागकल्पद्रुम में छापे की अनेक अशुद्धियाँ हैं, फिर भी उसकी सारावली का पाठ सबसे अच्छा है। यह पाठ काफी पुराना मालूम होता है, जो लिपिकों अथवा 'शोधकों' द्वारा विकृत भी नहीं हुआ है।

---

१. सूर और उनका साहित्य, पृष्ठ ६३

लखनऊ की सारावली निश्चित रूप से रागकल्पद्रुम की नकल है। इसका एक बड़ा प्रमाण यह है कि रागकल्पद्रुम और लखनऊ की सारावली के प्रथम चार पृष्ठों में छंदों की जो संख्या छपी है, वह दोनों में पाँचवे पृष्ठ से बंद हो गई है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि नवलकिशोर प्रेस के कम्पोजीटरों ने रागकल्पद्रुम के मुद्रित पृष्ठों से ही सारावली का कम्पोज किया था। रागकल्पद्रुम की नकल होते हुए भी लखनऊ के पाठ में कहीं-कहीं पर कुछ अंतर भी मिलता है। इसका कारण संपादकों तथा प्रूफ-शोधकों की कारगुजारी हो सकता है। रागकल्पद्रुम की सारावली के कुछ ब्रजभाषा शब्दों का लखनऊ संस्करण में अवधी रूप कर दिया गया है, तथा कुछ ऐसे परिवर्तन भी किये गये हैं, जो रागकल्पद्रुम के प्रतिकूल हैं, किंतु गुजराती अनुवाद के अनुकूल हैं। यह बड़ी विचित्र बात है, जिसका कारण आसानी से समझ में नहीं आता है।

साथ वाले नक़शे से ज्ञात होगा कि लखनऊ की सारावली के कुछ पाठ रागकल्पद्रुम के पाठ से नहीं मिलते हैं, बल्कि वे गुजराती अनुवाद और बंबई सारावली के पाठ से मिलते हैं। रागकल्पद्रुम में सारावली के छंद संख्या ५८१ की एक तुक छपने से भी रह गई है, जो लखनऊ संस्करण में मुद्रित है और उसका पाठ गुजराती अनुवाद तथा बंबई संस्करण के पाठ से बिलकुल मिलता हुआ है। यदि लखनऊ संस्करण में ही रागकल्पद्रुम का उल्लेख न होता, तब यह समझा जा सकता था कि उसका मुद्रण उस प्रति के आधार पर हुआ होगा, जिससे गुजराती में अनुवाद हुआ है।

जहाँ तक इन प्रतियों के प्रामाणिक पाठ का संबंध है, रागकल्पद्रुम का पाठ सबसे अच्छा है; किंतु उसमें कुछ ऐसी अशुद्धियाँ भी हैं, जो लखनऊ संस्करण सहित अन्य प्रतियों में शुद्ध रूप में मुद्रित हुई हैं। उदाहरणार्थ नक़शे में उल्लिखित छंद संख्या ६, २५५, ४३१, ५०६, ७७० और १०४० के पाठ रागकल्पद्रुम में अशुद्ध और दूसरी प्रतियों में शुद्ध हैं।

हमने रागकल्पद्रुम की उस प्रति का उपयोग किया है, जिसकी सारावली का मुद्रण सं० १८६८ में हुआ था। इसके बाद उसके दो-एक संस्करण कृष्णानंद जी के जीवन-काल में ही हुए थे। सं० १८९९ का संस्करण कलकत्ता के राष्ट्रीय पुस्तकालय में अब भी सुरक्षित है। इससे समझा जा सकता है कि लखनऊ संस्करण का मुद्रण सं० १८९८ के पश्चात् छपे हुए रागकल्पद्रुम के किसी संशोधित संस्करण के आधार पर हुआ होगा। यह भी

संभव हो सकता है, लखनऊ संस्करण के संपादकों और संशोधकों के पाठ का मिलान सारावली की किसी अन्य प्रति से भी कर इसकी संभावना बहुत कम है। कुछ भी हो, लखनऊ संस्करण पाठ-भेद कुछ उलझन अवश्य पैदा करते हैं। निम्न लिखित न भेदों का उल्लेख हुआ है—

छंद संख्या	राग० का पाठ	लखनऊ का पाठ	गुजराती पाठ
४	राजत निशि-बासर	बिराजत निशि-दिन	विराजे निशि-दिन
६	पौढक संखचुर मान	पौड्रक शंख द्युमान	पौंड्रक शंख द्युमान
६७	नर-नारायण	नारायण	नारायण
७६	नृपसुत	राजसुत	राजसुत
१६०	लगन बुद्ध	लगन शुद्ध	लगन शुद्ध
१६५	सुखछंद	स्वच्छंद	स्वच्छंद
१७९	बारंबार	बहु बार	बहु बार
२०३ / २७७	पैंडे	मारग	मारग
२३४	द्विजन	विप्रन	विप्रोंने
२५१	वेद-क्रम	वेद-रीति	वेद-रीति
२५५	विचारे	निवारे	निवार्या
२९२	रूप बल	क्षत्री बली	क्षत्रिय बल
३३४	नृप पौर	नृप द्वारै	नृप द्वारे
३५७	माहात्म्य	निज महिमा	निज महिमा
३६५	श्री वत्स लसत क्रीट कुंडल द्युति	कुंडल लसत किरीट महाद्युति	लसे कुंडल किरीट महाद्युति
३७६	रामचंद्र	राम सिंधु	राम सिंधु
३७९	देवी सों	देवकि सों	देवकि सुँ
४३१	दुर्ग मिटावन	दुःख मिटावन	दुःख निवारण
५०६	जसुमति कूं	नंदराय	नंदराये
५४६	तूं जान	सुजान	सुजाण

रा० का पाठ	लखनऊ का पाठ	गुजराती पाठ	बंबई का पाठ
....	ब्रज....स्याम वसंत	ब्रज....श्याम वसंत	ब्रज...श्याम वसंत
और दुर्योधन और गंधारी	गांधारी दुर्योधन आदिक	गंधारी-दुर्योधन आदिक	गांधारी दुर्योधनआदिक
तीन कोट सजि	तीन कोट भट	त्रण कोटी भट	तीन कोट भट
जहाँ है नृप	जहँ सोवत	जयां सूतो	जहँ सोवत
अंग तपाय	अगनित पाप	अगणित पाप	गअगणित पाप
अटल सत्रु	अटल शक्ति	अटल शक्ति	अटल शक्ति
अति पूरब	अति पूरन	अति पूरण	अति पूरण
विपुल सिंघ	महा सिंह	महा सिंह	महा सिंह
माधौपुर नीके	द्वारका नीके	द्वारिका निकट	द्वारका नीके
युद्ध भारी भयौ	युद्ध कियौ तब	युद्ध कर्यु तब	युद्ध कियौ जब
जांबुवत स्यमंतक मनि	स्यमंत मनि जांवती सह	स्यमंतमणि जांबवति सह	स्यमंत मणि जाम्बती सह
बक्स्यौ अपार	बढ्यौ अपार	वध्यो अपार	बढ्यो अपार
बेई हैं	बसी रहैं	वसी रहे	बसी रहैं
लै उपहार जेहि दीजे	जाहि अर्चना दीजे	जेने अर्चन दीजे	जाहि अर्चना दीजै
हरि प्रतिज्ञा राखि	हरि लज्जा राखी	हरिए लज्जा राखी	हरि लज्जा राखी
शूकर क्षेत्र	शुभ कुरुक्षेत्र	शुभ कुरुक्षेत्र	शुभ कुरुक्षेत्र
शत दल	सदल	सदल	सदल
बिधाता तप करयो	शिव विधान तप करेउ	शिवविधान तप कर्यु	शिव विधान तप करेउ
ध्रुव	ध्रुव	ध्रुव	ध्रुव
हरित पीत	हरि प्रतीत	हरि प्रतीत	हरि प्रतीत
मदन	स्मर	स्मर	स्मर
सजि	रिजि	रिझी	रिजि
बीन	बीर	वीर	बीन

बंबई के सूरसागर में सारावली कहाँ से ली गई है, इसके विषय में निश्चत रूप से कुछ नही कहा जा सकता है। श्री नंददुलारे जी वाजपेयी के पत्र से ज्ञात होता है कि भारतेन्दु जी के पुस्तकालय में सारावली की जो प्रति थी, उसी को राधाकृष्णदास जी ने इस सूरसागर में छपवाया था। इसका उल्लेख सूरसागर की भूमिका में नहीं है, जैसा श्री वाजपेयी ने लिखा है। भारतेन्दु जी ने उसे किस प्रति से नकल कराया, इसका पता नही चला है। इसके पाठ का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि रागकल्पद्रुम और लखनऊ के पाठों से कुछ भिन्न होते हुए भी इसमें उनसे कोई मौलिक अंतर नही है। बहुत संभव है, भारतेन्दु जी ने भी इसे रागकल्पद्रुम से ही नकल कराया हो।

बंबई की सारावली चाहे भारतेन्दु जी की प्रति से छपी हो और चाहें किसी अन्य प्रति से, इसमें व्रजभाषा शब्दों का संस्कृतीकरण किसी प्राचीन प्रति के आधार पर होना संभव नहीं है। यह तो श्री वेंकटेश्वर प्रेस के संस्कृतज्ञ प्रूफ-शोधकों की कृपा का फल ही हो सकता है। नीचे के नक़्शे से ज्ञात होगा कि बंबई संस्करण में व्रजभाषा शब्दों को या तो 'शुद्ध' किया गया है, या उनके संस्कृत रूप किये गये हैं, जब कि अन्य प्रतियों के पाठों में ऐसा नहीं है—

छंद सं०	राग० का पाठ	लखनऊ का पाठ	बंबई का पाठ
६०	नेंम	नेम	नियम
६१	दीनौं	दीन्ह	दीन्हों
६४	उनसौं	उनके	उनसे
६६	कूँ	कों	को
६८	परचौ	परेव	परेउ
७०	हरदै	हृदय	हृदय
७१	दुतिय	दुतिय	द्वितिय
८५	धरचौ	धरेव	धरेउ
९१	पहिलें	प्रथम	प्रथम
९३	मोकूँ	मोकों	मोको
९३	धारचौ	धारेव	धारेउ
९७	ततछिन	ततछन	तत्क्षण
९९	करचौ	कियौ	कियौ

राग० का पाठ	लखनऊ का पाठ	बंबई का पाठ
पन	प्रण	प्रण
सूँ	सों	सों
जस	यस	यश
च्यार	चारों	चारों
तोरचौ	तोरेव	तोरेउ
निरभै	निरभय	निर्भय
भुत्र	भुव	भू
ताकूं	ताकों	ताको
कीनौं	कीन्हों	कीन्हों
जग्य	जज्ञ	यज्ञ
ऊधौ	उद्धव	उद्धव
निह्चै	निश्चय	निश्चय
जुद्ध	युद्ध	युद्ध

का संक्षिप्त परिचय—

ारावली की चारों मुद्रित प्रतियो के आरंभ में 'बंदौ श्री हरि-पद की टेक का वह मंगलाचरण वाची पद है, जो कुछ पाठांतर के साथ की मुद्रित प्रतियों के आरंभ में भी मिलता है। संभव है, मूल रचना न हो और इसे सारावली के लिपिकार ने बाद में जोड़ दिया हो; ारावली का प्रथम छंद भी एक प्रकार से मंगलाचरण का ही है। पश्चात् इस रचना की रागिनी और ताल को 'रागिनी काफी, ताल लाया गया है। यह रचना 'सार' और 'सरसी'[1] छंदों में कथित होली-गान के रूप में है, जिसका आरंभ 'खेलत यहि विधि हरि होरी, हो वेद विदित यह बात' की टेक से हुआ है[2]। इस वृहत् गान में ुकी छंद हैं।

और सरसी मात्रिक छंद है। सार में २८ और सरसी में २७ मात्राएँ हैं। दोनों छंदों में १६-१६ मात्राओं के पश्चात् यति होती है।

ल्पद्रुम में यह टेक रचना के अंत में और बीच-बीच में भी दुहराई। हमने इसे केवल आरंभ में ही दिया है।

इस रचना के आरंभिक ४ छंदों में अविगत, आदि, अनंत, अनुपम, अलख, अविनाशी, प्रगट पुरुषोत्तम, पूर्ण ब्रह्म के प्रिया-प्रियतम रूप में आदि वृंदावन की कुंज-लताओं में विहार करने का वर्णन है। यह आदि वृंदावन पवित्र सलिला कालिंदी के रत्नजटित तट पर स्थित है, जिसके मणिमय गोवर्धन पर्वत की सघन कंदराओं में गोपिका-मंडल के मध्य वे निशि-दिन विहार किया करते हैं। छंद सं० ५ से १० तक में बतलाया गया है, इस प्रकार खेलते हुए उनके चित्त में सृष्टि-विस्तार करने की इच्छा हुई। इसके लिए उन्होंने अपने आप पुरुष का अवतार प्रकट किया और माया ने उस काल-पुरुष के अंग में क्षोभ उत्पन्न किया। तब अट्ठाईस तत्व और तीन गुण प्रकट हुए। छंद सं० ११ से २५ तक नारायण के नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति और उनके द्वारा सृष्टि-रचना करने का वर्णन है। ब्रह्मा ने होली-खेल के रूप में चौदह लोक, नौ खंड, सात द्वीप, स्वायंभू मनु, शतरूपा, लोकपाल और देव-दानवादि की सृष्टि की। छंद संख्या २६ से ३६ तक होली के रूप में देवासुर संग्राम का वर्णन है। इसके अंत में बतलाया गया है कि जब-जब हरि की माया से दानव और असुर प्रकट होते हैं, तब-तब पूर्णब्रह्म श्री कृष्ण अवतार धारण कर उनका संहार किया करते हैं।

छंद ३७ से श्री कृष्ण के २४ अवतारों का वर्णन आरंभ हुआ है। इसके अंतर्गत १२ छंदों में ध्रुव की कथा, ३५ छंदों में प्रहलाद की कथा, १७७ छंदों में रामचरित्र और १७ छंदों में बलि की कथा का वर्णन है। यह समस्त वर्णन ३२८ छंदों में समाप्त हुआ है। इसमें रामावतार की कथा अति उत्तम रीति से विस्तार पूर्वक वर्णित है। अन्य अवतारों का संक्षिप्त वर्णन हुआ है। अंत में बतलाया गया है, ब्रजमंडल में सदैव विहार करने वाले श्री कृष्ण के ये सब अंशावतार हैं। जिन नित्य, अखंड, अनंत श्री कृष्ण का कोई आदि-अंत नहीं जानता है, उनको जब प्रगट लीला करने की सुधि आती है, तब वे चंद्रमा की सोलह कलाओं के समान स्वयं अवतरित होते हैं।

छंद सं० ३६१ से ८६७ तक के ५०७ छंदों में श्रीकृष्ण-चरित्र का अत्यंत विस्तृत एवं मनोहर वर्णन हुआ है। इसमें उनकी ब्रज लीला १३० छंदों में, मथुरा लीला १३० छंदों में और द्वारका लीला २४७ छंदों में वर्णित है। इस प्रकार श्री कृष्ण के २४ अवतारों की प्रकट लीलाओं के गायन के साथ इस रचना के एक खंड की पूर्ति होती है।

इस रचना के शेष २४० छंदों में इसका द्वितीय खंड है, जिसमें परब्रह्म श्री कृष्ण की नित्य निकुंज लीलाओं का गायन हुआ है। आरंभ में कहा गया है, एक दिन रुक्मिणी से सुखदायक वार्तालाप करते हुए श्री कृष्ण को अपनी जन्मभूमि की सुधि आई। वे वहाँ के दिव्य पर्वत, बन और कुंजों की विविध लीलाओं का स्मरण कर आनंद विभोर हो गये। इसके आगे बतलाया गया है, बलदेव तथा उद्धव सहित श्री कृष्ण पुनः ब्रज पधारे। वे गोकुल-वृंदावन में नित्य विहार करते हुए राधा-चंद्रावली और गोप-गोपियों के साथ दान, मान, रास आदि अनेक रस-क्रीड़ाओं में प्रवृत्त हुए। वे बाल लीला द्वारा यशोदा को सुख देते हैं और तरुण रूप धारण कर गोपियों को आनंदित करते हैं।

इसी प्रसंग में संख्या ९३७ से ९६६ तक के ३० छंदों में दृष्टकूट कथन द्वारा राधिका का रूप-वर्णन किया गया है। संख्या १०१२ से १०१८ तक के सात छंदों में राग-रागनियों का वर्णन है और संख्या १०२४ से १०५० तक के २७ छंदों में बसंत-विहार का मनोरम कथन किया गया है। इसके उपरांत संख्या १०५१ से १०८७ तक दैनिक क्रम से पूरे एक माह के होलिकोत्सव का आनंदपूर्ण वर्णन हुआ है। इसी के अंतर्गत संख्या १०७२ से १०७६ तक के ५ छंदों में विविध वाद्य यंत्रों का वर्णन है। होलिकोत्सव के उपरांत बन-विहार और कृष्ण-चरित्र के वक्ता-श्रोताओं की परंपरा का कथन है। फिर उपसंहार में सिद्धांत रूप से निम्न लिखित कथन हुआ है—

वृंदाबन हरि यह बिधि क्रीड़त, सदा राधिका संग।
भोर न निसा कबहूँ जानत हैं, सदा रहत इक रंग ॥१०९६॥
सदा एक रस, एक अखंडित, आदि, अनादि, अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगल सरूप ॥१०९९॥
सकल तत्व ब्रह्मांड देव, पुन माया सब बिधि काल।
प्रकृति-पुरुष, श्री-पति नारायन, सबहिं अंस गोपाल ॥११०१॥

यह रचना आरंभ से अंत तक होली-खेल के रूपक में है। इसमें जिस प्रकार होली खेलते हुए सृष्टि-रचना का कथन हुआ है, उसी प्रकार होली-दाह के रूप में संकर्षण की मुखाग्नि द्वारा समस्त ब्रह्मांडों के अंत होने का भी वर्णन है। अंत में इसके पठन-पाठन और गायन का माहात्म्य बतला कर इसे संवत्सर की सरस लीला बतलाया है और निम्न लिखित छंद पर इसे समाप्त किया है—

सरस संमतसर लीला गावै, जुगल चरन चित लावै।
गरभ-बास बंदीखाने मैं, 'सूर' बहुरि नहिं आवै ॥११०७॥

प्रामाणिकता की परीक्षा—

'सारावली' की प्रामाणिकता पर विचार करने से पूर्व हम इसके निम्न लिखित छंदों की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं—

गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रबीन ।
सिब बिधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन ॥१००२॥
करम-जोग पुनि ज्ञान-उपासन, सब ही भ्रम भरमायौ ।
श्री बल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला-भेद बतायौ ॥११०२॥
ता दिन तैं हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद बंद ।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि, गावत अति आनंद ॥११०३॥

संख्या १००२ और ११०२ के उपर्युक्त छंदों में सूरदास की ६७ वर्ष की आयु का उल्लेख है यथा उनके गुरु श्री बल्लभाचार्य जी द्वारा उनके भ्रम का निवारण कर उन्हें तत्व सुनाने और लीला-भेद बतलाने का वर्णन है। ये उल्लेख सूरदास के जीवन वृत्तांत के अन्वेषण के लिये बड़े महत्वपूर्ण समझे गये हैं। इसी लिए सूरदास के समस्त आलोचकों का ध्यान इनकी ओर गया है। अधिकांश आलोचकों ने इन उल्लेखों के कारण 'सारावली' को सूरदास की प्रामाणिक रचना स्वीकार किया है। उन्होंने इसके आधार पर सूरदास के जीवन-वृत्तांत के संबंध में कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं।

छंद सं० ११०३ में आये हुए 'एक लक्ष पद बंद' का अर्थ 'एक लाख पदों से युक्त' और 'ताकौ सार' का अर्थ 'उसका संक्षेप या उसकी सूची' समझते हुए हिंदी के प्रायः सभी विद्वानों ने सारावली को सूरदास कृत एक लाख पदों वाले सूरसागर की सूची बतलाया है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने अपने 'सूरदास' प्रबंध में 'सारावली' का यह 'दावा' स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सूरसागर और सारावली के कथा भाग की तुलना करते हुए उन दोनों में २७ अंतर बतलाये[1] और अपने विश्लेषण के सार रूप निम्न लिखित मत प्रकट किया—

"उपर्युक्त विवेचन के निष्कर्ष स्वरूप यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से 'सूरसागर-सारावली' सूरदास की प्रामाणिक रचना नहीं जान पड़ती। तथा-कथित आत्मकथन और कवि-छापों से भी यही संकेत मिलता है[2]।"

---

१. सूरदास, पृ० ७० से ७५ तक

२. वही, पृ० ८३

उपर्युक्त निष्कर्ष निकालते हुए डा० व्रजेश्वर वर्मा ने भी एक लक्ष पद बंद का अर्थ एक लाख पदों वाले ही किया है, जैसा कि अन्य विद्वान अभी तक करते रहे हैं। हमने अपने 'सूर-निर्णय' नामक ग्रंथ में उक्त अर्थ से असहमति प्रकट करते हुए डा० वर्मा के मत पर विस्तार पूर्वक विचार किया है[1] और अपना अभिमत इस प्रकार दिया है—

"सारावली का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन करने पर हम निस्संकोच रूप से कह सकते हैं कि यह लाख या सवा लाख पदों का सूचीपत्रात्मक सार रूप नहीं और न सारावली का यह 'दावा' ही है। फिर भी "कथावस्तु, भाव, भाषा, शैली और रचना के दृष्टिकोण के विचार से" निश्चय ही यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसके "आत्मकथन और कवि-छापों से भी" इसी बात की पुष्टि होती है[2]।"

सारावली की प्रामाणिकता की भली भाँति परीक्षा करने से पूर्व यह निश्चय होना आवश्यक है कि वह सूरसागर का सूचीपत्र है या नहीं।

क्या 'सारावली' सूरसागर का सूचीपत्र है ?

इस रचना को सूरसागर का सूचीपत्र बतलाने में उसके 'एक लक्ष पद बंद' उल्लेख के अतिरिक्त मुद्रित सारावली के शीर्षक और उसकी पुष्पिका ने भी भ्रम उत्पन्न किया है। सभी प्रतियों में शीर्षक रूप से प्रारंभिक एवं अंतिम शब्दावली इस प्रकार प्राप्त होती है—

अथ श्री सूरदास जी कृत सूरसागर सारावली तथा सवा लाख पद के सूचीपत्र।

इति श्री सूरदास जी कृत संमतसर लीला तथा सूर सारावली तथा सवा लाख पद के सूचीपत्र समाप्तम्।

दृष्टकूटात्मक कथन के उपरांत छंद संख्या ९९६ के अंत में निम्न लिखित उल्लेख है—

इति दृष्टकूट सूचनिका संपूर्ण।

उपर्युक्त पुष्पिका और शीर्षक इस रचना में आरंभ से ही हैं, अथवा बाद में किसी लिपिकर्त्ता या संकलयिता ने सम्मिलित किये, इसका ठीक-ठीक निश्चय तो इसकी प्राचीनतम प्रतियाँ उपलब्ध होने पर ही हो सकेगा; किंतु सं० १८८० में भी कुछ लोग इसे सूरसागर का सूचीपत्र ही समझते थे। इसके गुजराती अनुवादक श्री दयाराम जी ने इसका उल्लेख किया है।

१. सूर निर्णय, पृष्ठ १०७ से १४३ तक

२. वही, पृ० १०८

श्री दयाराम जी का कथन इस प्रकार है—

सविता सम शोभीत छे, संवत्सर लीलाय ।
कोइक सूचीपत्र कहे, सारावली कहेवाय[1] ।।

इस रचना को सूरसागर का सूचीपत्र क्यों कहा जाने लगा, इसके उत्तर के लिए वार्ता साहित्य का अनुसंधान करना आवश्यक है। अष्टछाप की वार्ता में सूरदास द्वारा रचित पदों का परिमाण बतलाने के लिए 'सहस्रावधि' और 'लक्षावधि' दोनों प्रकार के उल्लेख मिलते हैं[2]। 'सहस्रावधि' का अर्थ सहस्र की अवधि अर्थात् एक हजार होने के अतिरिक्त सहस्रों की अवधि अर्थात् एक लाख भी हो सकता है। फिर 'लक्षावधि' स्पष्टतया प्राप्त ही है। सूरदास द्वारा रचे हुए पदों की संख्या चाहें एक लाख न हो, किंतु वह एक हजार भी नहीं हो सकती, क्यों कि छः हजार से अधिक पद तो अब तक प्राप्त ही हो चुके हैं। ऐसी दशा में 'सहस्रावधि' का दूसरा अर्थ ही समीचीन होगा।

हरिराय जी कृत भावप्रकाश वाली वार्ता के प्रसंग १० से ज्ञात होता है कि सूरदास ने सवा लाख पद-रचना का संकल्प किया था, किंतु वे अपने अंतिम समय तक एक लाख पदों की रचना ही कर सके थे। शेष पच्चीस हजार पद स्वयं श्रीनाथ जी ने 'सूरश्याम' की छाप से रच कर सूरदास की रचना में सम्मिलित कर दिये थे[3]। वार्ता के इन उल्लेखों के कारण ही लोक में यह प्रसिद्धि हो गई कि सूरदास ने लाख-सवालाख पदों की रचना की थी। इसी प्रकार 'सारावली' के उल्लेख 'ताकौ सार' और उसमें वर्णित लीलाओं का सूरसागर की विविध लीलाओं से साम्य देख कर 'सारावली' को सूरसागर का सारात्मक सूचीपत्र समझ लिया गया है।

यहाँ पर इस विषय का विवेचन करना अप्रासंगिक होगा कि सूरदास ने लाख-सवालाख पद रचे या नहीं,[4] किंतु यह निश्चित है कि सूरसागर की रचना उनके जीवन के अंतिम काल तक होती रही। वार्ता साहित्य से भी

---

१. गुजराती सारावली, पृ० २, पद ७
२. (क) अष्टछाप (कंठमणि शास्त्री) पृ० ३८ और ४४
   (ख) सूरदास की वार्ता (प्रभुदयाल मीतल) पृ० २७, ५४ और ६०
३. सूरदास की वार्ता, पृ० ५४
४. इस विषय का विस्तृत विवेचन 'सूर-निर्णय' पृ० १७० से १८२ में है।

इसी कथन की पुष्टि होती है[1] । सूरदास का देहावसान सं० १६४० के लगभग हुआ था[2] । यदि सारावली को सूरदास कृत लाख-सवालाख पदों वाले सूरसागर का सारात्मक सूचीपत्र माना जावे, तब उसका रचना-काल भी सं० १६४० से पूर्व का नहीं हो सकता । उस समय सूरदास की आयु १०५ वर्ष के लगभग थी। वल्लभ संप्रदाय के इतिहासानुसार सारावली का रचना-काल सं० १६०२ है। तब तक सूरदास कृत लाख-लवालाख पद-रचना का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है । ऐसी दशा में सारावली को एक लाख पदों के सूरसागर का सूचीपत्र बतलाना अत्यंत भ्रमात्मक है । जब सारावली सूरसागर का सूचीपत्र ही नहीं है, तब डा० ब्रजेश्वर वर्मा के बतलाये हुए २७ अंतर ही निरर्थक हो जाते हैं। अब प्रश्न यह है, 'एक लक्ष पद बंद' का वास्तविक अर्थ क्या है ?

एक लक्ष पद बंद का अर्थ

सूर-साहित्य के कतिपय विद्वान 'एक लक्ष' शब्दों को संख्यावाची मान कर भी सूरदास कृत एक लाख पद-रचना में विश्वास नहीं करते हैं। वे 'बंद' शब्द पदों की पंक्तियों का सूचक मानते हैं । ऐसे ही एक विद्वान डा. हरिवंशलाल जी शर्मा का मत है—

"एक लाख पंक्तियाँ दस सहस्र पदों से भी कम में आ सकती हैं और ६७ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने अवश्य इतने पदों की रचना करली होगी अथवा कवि की भावी पद-निर्माण-योजना का भी यह सूचक हो सकती है[3]।

हम लिख चुके हैं, 'एक लक्ष' शब्द संख्या वाची नहीं है, अतः सारावली के उल्लेखानुसार सूरदास द्वारा एक लाख पद या उतनी पंक्तियाँ रचने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता है । इसका सीधा-सादा अर्थ तो 'लक्ष' को 'उद्देश्य' मानने से होता है; अर्थात् अपने गुरु श्री वल्लभाचार्य जी से तत्व और लीला-भेद का रहस्य जान कर उन्होंने इसी एक लक्ष से पदबद्ध हरिलीला का गायन किया । यह अर्थ सुगम और विवाद रहित है । 'एक लक्ष' का दूसरा अर्थ सांप्रादायिक मान्यता के अनुसार भगवान् श्री कृष्ण होता है । श्रीमद्भागवत

---

१. सूरदास की वार्ता, पृ० ५४ से ६१ तक

२. सूर निर्णय, पृ० १०४

३. सूर और उनका साहित्य, पृ० ६२

में नव लक्षणों —१. सर्ग, २. विसर्ग, ३, स्थान, ४. पोषण, ५. ऊति, ६. मन्वंतर, ७. ईशानुकथा, ८. निरोध और ९. मुक्ति— से लक्ष्य अर्थात् आश्रय स्वरूप भगवान् श्री कृष्ण की दश विध लीलाओं का निरूपण हुआ है, जिसकी व्याख्या सूरदास ने इस प्रकार की है—

श्री भागवत सकल गुन-खानि ।
सर्ग, विसर्ग, स्थानरु, पोषण, उति, मन्वंतर जानि ।।
ईस, प्रलय, मुक्ति, आश्रय पुनि, ये दस लक्षन होय ।
'उत्पति तत्व' सर्ग सो जानो, 'ब्रह्मकृत' विसर्ग है सोय ।।
'कृष्ण अनुग्रह' पोषण कहियै, 'कृष्ण-वासना' ऊति ही जानो ।
'आछे धर्मन की प्रवृत्ति' जो, सो मन्वंतर मानो ।।
'हरि हरिजन की कथा' होय जहाँ, सो ईसानु ही जान ।
'जीव स्वतः हरि ही मति धारै', सो निरोध हिय मान ।।
'तजि अभिमान कृष्ण जो पावै', सोई मुक्ति कहावै ।
'उत्पति, पालन, प्रलय करै जो हरि,' आश्रय कहावै ।।
'सूरदास' हरि की लीला लखि, कृष्ण रूप ह्वै जावै ।।

श्री बल्लभ गुरु ने सूरदास को भगवान् श्री कृष्ण की इन लीलाओं का तत्व सुना कर उनका भेद बतलाया था । उसी दिन से उन्होंने 'एक लक्ष' भगवान् श्री कृष्ण के पदों की वंदना कर जो लीलाएँ गाना आरंभ किया, उनका सार उन्होंने 'सारावली' में आनंद पूर्वक गाया है—

श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला-भेद बतायौ ।।११०२।।
ता दिन तें हरि लीला गाई, एक लक्ष्य-पद बंद ।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि, गावत अति आनंद ।।११०३।।

सूरसागर के भागवत-माहात्म्य वाले मंगलाचरण में भी सूरदास ने ऐसी ही वंदना की है—

बंदौं श्री गिरिधरन लाल के, चरन कमल रज सदा सीस वस ।
जिनकी कृपा-कटाच्छ होत ही, पायौ परम तत्व लीला-रस[1] ।।

---

१. कांकरोली सरस्वती भंडार में प्राप्त सूरसागर के भागवत माहात्म्य का मंगलाचरण वाची पद ।

अष्टछाप के नंददास ने भी स्वरचित भागवत भाषा के मंगलाचरण में नव लक्षणों से लक्ष्य भगवान् श्री कृष्ण की इसी प्रकार वंदना की है—

नव लक्षण करि 'लक्ष' जो, दसवें आस्रय रूप।
'नंद' बंदि लै ताहि कों, श्रीकृष्णास्य अनूप ॥

'एक लक्ष्य पद बंद' का गलत अर्थ करने से 'सारावली' के स्वरूप ज्ञान के संबंध में जो भ्रम उत्पन्न हो गया है, वह इसका उपर्युक्त सही अर्थ करने से दूर हो सकेगा। अब सारावली के रचना-काल पर भी विचार करना आवश्यक है।

रचना-काल का संदर्भ

'गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रबीन' के प्रमाणानुसार सूरदास के जन्म अथवा संप्रदाय-प्रवेश से ६७ वें वर्ष अर्थात् संवत् १६०२ या सं० १६३४ में सारावली की रचना होने का संकेत मिलता है। हमें यहाँ पर इसके यथार्थ रचना-काल का निश्चय करना है।

महाप्रभु बल्लभाचार्य ने अपने ग्रंथों में माधुर्य भक्ति का निरूपण करते हुए भी सेवा में बाल भावना को ही प्रधानता दी थी। सेवा का यह क्रम बल्लभाचार्य जी और उनके ज्येष्ठ पुत्र गोपीनाथ जी के समय तक उसी प्रकार चलता रहा। जब गोसाईं विट्ठलनाथ जी बल्लभ संप्रदाय के आचार्य हुए, तब उन्होंने सं० १६०२ में अधिकारी कृष्णदास के सहयोग से श्रीनाथ जी की सेवा-विधि का विस्तार किया[1]। उसी समय से बल्लभ संप्रदाय की सेवा में निकुंज-भावना का भी प्रवेश हुआ और बल्लभाचार्य जी द्वारा प्रतिपादित माधुर्य भक्ति भी विट्ठलनाथ जी द्वारा श्रीनाथ जी की सेवा का अंग बनाई गई। इसके कारण बल्लभ संप्रदाय की सेवा-विधि में नवीनता और अद्भुतता आई, जिसका श्रेय श्री विट्ठलनाथ जी को था। इसका वर्णन सूरदास ने उसी काल में रची हुई अपनी 'सेवा फल' नामक लघु रचना के अंत में इस प्रकार किया है—

सेवा की यह अदभुत रीति। श्री विट्ठलेस सों राखै प्रीति ॥
श्री आचार्यहि प्रगट बनाई। कृपा भई, तब मन में आई ॥

---

१. अष्टछाप परिचय, पृ० २७-२८

सेवा कौ फल कहेउ न जाई। सुख सुमिरै श्री बल्लभ राई ।।
सेवा कौ फल सेवा पावै। 'सूरदास' प्रभु हृदय समावै ।।

सेवा की इस नवीनता और अद्भुतता के कारण बल्लभ संप्रदाय में माधुर्य भक्ति पूर्ण जिस निकुंज-भावना का समावेश हुआ, उसका विवेचन श्री विट्ठलनाथ जी ने अपने 'शृंगार रस मंडन' और 'निकुंज विलास' ग्रंथों में किया है। सूरदास जिस निकुंज-लीला के दर्शनों की अभिलाषा इतने दिनों से कर रहे थे, वह गुरु-प्रसाद से उनकी ६७ वर्ष की आयु में पूर्ण हुई थी। यहाँ पर वल्लभाचार्य जी की अपेक्षा विट्ठलनाथ जी के लिए गुरु शब्द का प्रयोग होने से कोई भ्रम नहीं होना चाहिए। कारण यह है, सूरदास वल्लभाचार्य जी और विट्ठलनाथ जी में कोई भेद नहीं मानते थे। वे गोसाईं जी में भी गुरु-भाव से ही श्रद्धा रखते थे, जैसा 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' से ज्ञात होता है।

सूरदास की ६७ वर्ष की आयु सं० १६०२ में हुई थी, अतः यही संवत् 'सारावली' का रचना-काल कहा जा सकता है। संप्रदाय-प्रवेश से ६७ वर्ष अनंतर संवत १६३४ को इसका रचना-काल इसलिए नहीं माना जा सकता कि 'संवत्सर लीलाओं' में सं० १६१५ के पश्चात बढ़ाये गये वर्षोत्सवों का इसमें संकेत भी नहीं मिलता है। बल्लभ संप्रदाय के इतिहास से विदित होता है कि गोसाईं विट्ठलनाथ जी ने रथ-यात्रा और छप्पनभोग आदि उत्सवों के आयोजन की व्यवस्था सं० १६१५ के पश्चात ही की थी[1]।

डा० मुंशीराम जी शर्मा का मत है, सारावली में उपलब्ध ६७ वर्ष का संकेत उसके रचना-काल का नहीं, वरन् सूरदास के हरिलीला-दर्शन का सूचक है[2] और वह समय उनके संप्रदाय-प्रवेश का ही हो सकता है। इस मत के मानने पर या तो सूरदास का जन्म सं० १५३५ से पूर्व मानना होगा, अथवा उनका संप्रदाय-प्रवेश सं० १५६७ के पश्चात्। ये दोनों संवत् अब निर्विवाद रूप से निश्चित हो चुके हैं[3]। अतः सूरदास की ६७ वर्ष की आयु में ही सूर-सारावली की रचना मानना उचित होगा। इस प्रकार इसका रचना-काल सं० १६०२ सिद्ध होता है।

---

१. अष्टछाप-परिचय, पृ० ३८ और सूर निर्णय, पृ० ९७—९८
२. सूर-सौरभ, पृ० ४
३. अष्टछाप-परिचय, पृ० १२७—१२८

सं० १६०२ तक सूरदास ने हरि-लीला विषयक जिन कथात्मक और सेवात्मक पदों का गायन किया था, उन्हीं के सैद्धांतिक सार रूप उन्होंने 'सारावली' की रचना की थी। अष्टछाप के अन्य सुकवि नंददास ने भी इसी प्रकार 'रास पंचाध्यायी' के कथात्मक वर्णन के अनंतर उसके सैद्धांतिक सार रूप से 'सिद्धांत पंचाध्यायी' की रचना की थी। इस दृष्टि से हम भी डा० ब्रजेश्वर वर्मा के उन २७ अंतरों से सहमत होकर उन्हीं के शब्दों में कहेंगे—

सारावली सूरसागर के पदों का सूचीपत्र नहीं है। यह एक स्वतंत्र रचना है, जिसकी कथावस्तु में सूरसागर की कथावस्तु से घनिष्ट साम्य होते हुए भी, उसे सूरसागर का संक्षेप भी नहीं कह सकते हैं[1]।

फिर भी यह सूरदास की प्रामाणिक रचना है। इसकी कवि-छाप और भाषा-शैली से भी इसकी पुष्टि होती है। डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सारावली की कवि-छापों के अनुपात और इसकी भाषा-शैली के उदाहरणों को इसकी अप्रामाणिकता के समर्थन में उपस्थित किया है। हम इन विषयों पर विस्तार से विचार करेंगे।

रचयिता और उसकी नाम-छाप—

सूरदास के पदों में सूर, सूरदास, सूरज और सूरश्याम की नाम-छाप मिलती हैं। इनमें सूरश्याम के अतिरिक्त अन्य नाम-छाप सारावली में भी हैं। सूर-साहित्य के कुछ विद्वानों का मत है, सूर और सूरदास की छाप तो अष्टछापी सूरदास की हैं, किंतु सूरज और सूरश्याम अन्य कवियों की नाम-छाप हैं। डा० जनार्दन मिश्र ने अपने 'सूरदास' नामक अंगरेजी प्रबंध में इस संबंध में विचार करते हुए लिखा है, सूरजदास, सूरदास और सूरश्याम तीनों पृथक्-पृथक् कवि हैं, जिनकी रचनाएं आपस में मिल गई हैं और वे सब अष्टछापी सूरदास के नाम से प्रसिद्ध हैं[2]।

वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है, सूरश्याम की छाप के पद स्वयं श्रीनाथ जी के रचे हुए हैं, जो सूरदास की रचना में मिला दिये गये हैं[3]। इसका

---

१. सूरदास, पृ० ७०

२. सूरदास, पृ० ७

३. सूरदास की वार्ता, पृ० ५४

लौकिक अर्थ यह हो सकता है, सूरश्याम की छाप के पद किसी ऐसे कवि के हैं, जो सूरदास के समान ही उत्तम पद-रचना करने में समर्थ था, किंतु उसने अपने व्यक्तित्व को अलग न रखकर पूर्णतया सूरदास के साथ मिला दिया है। सूरदास की समस्त रचनाओं का गहन अध्ययन करने पर यह कहना संभव होगा कि इनमें कौन से पद अन्य कवियों के हैं। यदि सूरदास के विभिन्न नाम कभी पृथक् कवियों के नाम सिद्ध होंगे, तब सबसे पहले सूरश्याम की रचनाओं को सूरसागर से निकाला जावेगा। अभी इस विषय पर निर्णयात्मक रूप से कहना बहुत कठिन है। फिर भी सारावली में 'सूरश्याम' की छाप का न होना उसकी प्रामाणिकता के ही पक्ष में है।

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने सारावली में प्राप्त कवि-छापों की गणना कर बतलाया है—"कवि ने केवल एक बार 'सूरदास', चार बार 'सूर' और छः बार 'सूरज' तथा संदिग्ध 'सूर जु' का प्रयोग किया है[1]।" हमको इसकी जाँच करने पर मालूम हुआ कि डा० वर्मा की गणना ठीक नहीं हुई है। उनके लिखे अनुसार 'सूरदास' छाप का एक बार आना तो ठीक है; किंतु सूरज नाम छः के बजाय केवल ३ बार और 'सूर' चार के बजाय ११ बार आया है। इस अंतर का कारण यह मालूम होता है कि दो बार प्रयुक्त 'सूर जु' को उन्होंने 'सूरज' समझ लिया है; यद्यपि एक बार (छंद संख्या ६८१) के प्रयोग को स्वयं उन्होंने भी संदिग्ध माना है[2]। इसके अतिरिक्त दो बार सूर्य के अर्थ में आये हुए 'सूरज' शब्द को भी उन्होंने कवि-छाप समझ लिया है। सारावली के निम्न लिखित उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जावेगा—

(१) 'सूरदास' का एक बार प्रयोग—

१. सोई 'सूरदास' ने बरने, जो कहे व्यास पुरान ।।३५३।।

(२) 'सूरज' का तीन बार प्रयोग—

१. तिनके नाम कहत 'कवि सूरज', निर्गुण सब के ईस ।।७।।

२. अट्ठाईस तत्व यह कहियत, सो 'कवि सूरज' नाम ।।१०।।

३. महिमा-सिंधु कहाँ लगि बरनै, 'सूरज' कवि मतिमंद ।।६६६।।

---

१. सूरदास, पृ० ८२

२. सूरदास, पृ० ८२

(३) 'सूर' का ११ बार प्रयोग—

१. सातौं दीप कहे शुक मुनि नै, सोई कहत अब 'सूर' ।।३४।।
२. कछु संक्षप 'सूर' अब बरनत, लघुमति दुरबल बाल ।।१५७।।
३. बालमीक मुनि कही कृपा कर, कछु एक 'सूर' जो गाई ।।१९२।।
४. सोसुख 'सूर' कह्यौ, वह कीरत जगत करी विस्तार ।।२३२।।
५. 'सूर' समुद्र की बूँद भई यह, कवि बरनन कहा करि है ।।३१५।।
६ सेस सहस्र मुख रटत निरंतर, 'सूर' पार किमि पावै ।।३४५।।
७. सेस सहस्र मुख पार न पावैं, कछु एक 'सूर' जु गायौ ।।६८१।।
८ ताकौ सार 'सूर' सारावलि, गावत अति आनंद ।।११०३।।
९. तब बोले जगदीस जगत-गुरु, सुनो 'सूर' मम गाय ।।११०४।।
१०. धरि जिय नेम 'सूर' सारावलि, उत्तर-दक्षिण-काल ।।११०५।।
११. गरभ-बास बंदीखाने मैं, 'सूर' बहुरि नहि आवै ।।११०७।।

निम्न लिखित दो तुकों में सूर्य के अर्थ में प्रयुक्त 'सूरज' शब्द को डा० वर्मा ने कवि-छाप समझ लिया है। यदि उसे कवि-छाप मानें तो अर्थ मे गडबड़ हो जावेगी—

१. सूरज कोट प्रकास अंग मैं, कटि मेखला बिराजै ।।३३४।।
२. आये ब्रह्म सभा में बामन, सूरज तेज बिराजैं ।।३३६।।

उपर्युक्त जिन ११ तुकों में 'सूर' छाप मिलती है, उसमें से डा० वर्मा ने केवल ४ छापों—३४, १५७, ३१५ और ११०७—का उल्लेख किया है। शेष ७ छापों में संख्या १९२, २३२, ३४५, ११०३, ११०४ और ११०५ में प्रयुक्त ६ छाप उनसे छूट गई हैं। तुक संख्या ६८१ में प्रयुक्त ७ वीं छाप 'सूर जु' को उन्होंने सूरज समझा है। इस प्रकार कवि छापों का अनुपात भी सूरसागर के विरुद्ध नहीं है; बल्कि इससे सारावली की प्रामाणिकता ही सिद्ध होती है।

अन्य सूरदास की संभावना

डा० ब्रजेश्वर वर्मा ने कवि-छाप के आनुपातिक आधार पर सारावली के अष्टछापी सूरदास की रचना होने में जो संदेह प्रकट किया है, उसका समाधान हम कवि-छाप के आधार पर ही कर चुके हैं। फिर भी उनकी उस संभावना पर भी विचार कर लेना चाहिए, जो उन्होंने इस रचना के रचयिता के संबंध में प्रकट की है। उन्होंने लिखा है—

"क्या यह सूरज कवि वह ब्रजवासी बालक तो नहीं है, जो नागरीदास के अनुसार ब्रज में 'ढ़ुंतुकिया होरी के भड़ौआ' गाता फिरता था और जिसे श्री गोस्वामी जी ने 'भगवत जस' वर्णन करने का उपदेश दिया था ? संभव है, गोस्वामी जी का उपदेश मान कर कालांतर में उसी ने 'सारावली' के नाम से होली का बृहद् गान रच दिया हो।" "यह संभावना अधिक है कि यह 'ढ़ुंतुकिया भड़ौआ' गाने वाला कवि कदाचित नाम-साम्य और विश्वास-साम्य के कारण अपनी रचना को प्रसिद्ध भक्त कवि सूरदास की रचना के समकक्ष रखने का लोभ न संवरण कर सका हो[1]।"

डा० वर्मा की इस कल्पना में कोई सार नहीं है। नागरीदास जी ने अपनी 'पद प्रसंग माला' में जिस सूरदास का उल्लेख किया है, वह अष्टछापी सूरदास ही है। हम यहाँ पर उक्त उल्लेख को ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं—

नागरीदास के उल्लेख

प्रसंग १—

दोऊ नेत्र करि हीन एक ब्रजवासी कौ लरिका ब्रज में सूरदास, सो होरी के भंडौवा बनावै ढ़ुंतुकिया। ताके बास तैं श्री गुसांई जू सौं जाइ लोगन नैं कही। ता पर श्री गुसांई जू वा लरिका कौं बुलाय वाके भडौवा सुने, हँसे। श्री मुख तैं कह्यौ जु लरिका, तू भगवत जस बनाय, श्री भागौत के अनुसार प्रथम जनम ही की लीला गाय। तब वानैं कही राज, हूँ कहा जानौं। तब आग्या करी भगवत इच्छा है, तू बनावैगौ। ऐसें श्री गुसांई जू की आग्या तें भगवत लीला भ्यासी, सरस्वती जिह्वाग्र भई। प्रथम ही प्रथम श्री सूरदास जू जनम लीला की बधाई बनाय अरु श्री गुसांई जू कौं सुनवाई। तब बहौत प्रसन्न भये, कंठी दुपटा महाप्रसाद दयौ, और सबन सौं आग्या करी जु श्रीठाकुर जू की आग्या तैं हम कहत हैं, बरसवें दिन जनमाष्टमी की जनम लीला की जनमाष्टमी कौं श्री गोवर्धननाथ जी आगें प्रथम ए ही बधाई गावैगे। सो अब लौं ए ही बधाई गावत हैं, सो यह पद—

राग आसावरी

ब्रज भयौ महर कै पूत, जब यह बात सुनी।
सुनि आनंदे सब लोक, गोकुल गनिक-गुनी॥......"

---

१. सूरदास, पृ० ८२–८३

प्रसग २

एक समैं श्री सूरदास जू बाहिर एकांत स्थान बैठे हे तहाँ हरि कृपा शब्दाहट सुन्यौ। तब नेननि कौं चित मैं दुख करिकै पद बनायौ। सो वह यह पद है—

कहावत ऐसे त्यागी दान।
च्यार पदारथ दये सुदामां, गुर के सुत दये आन॥
बभीषन कौं लंक दीनी, प्रेम प्रीत पहिचान।
रावन के दस मस्तक छेदे, दृढ़ गहि सारंग पान॥
प्रह्लाद कौं निज कृपा कीन्हीं, सुरपति किए निदान।
'सूरदास' पर बहुत निठुरता, नैनन हू की हान॥

सो वह यह पद बनाय गायौ। तब नेत्र ह्वै आये, अरु हरि दरसन भयौ। ता समैं आग्या भई, तू कछु मांगि। तब सूरदास यह मांगी जु मेरे नैत्र वैसे ही मुंदि जांय। यह रूप नैननि मैं लैकें, अब और कहा देखौं। तब फिर वैसे ही नेत्रहीन ह्वै गये। सो या भाँति दरसन करिकें वाही समैं बनायौ यह पद। सो वह यह पद—

सनमुख आवत बोलत बैन।
ना जानूं तिहिं समैं जु मेरें, सब तन श्रवन कि नैन॥
रौंम-रौंम में सुरति शब्द की, नख सिख लोचन ऐन।
इते मांझ बानी चंचलता, सुनी न समझी सैन॥
तब जकि थकि चकि ठई मौन मुख, अब न परै चित चैन।
सुनहु 'सूर' यह सत्य कि संभ्रम, किधौं सुपन, दिन, रैन॥

प्रसंग ३—

वैष्णौ सूरदास जू तिनके बहौत पद हैं अरु प्रसिद्ध हैं। तिन सूरदास जू की स्तुति पातिसाह अकबर सुनी, अरु सूरदास जू सौं मिलि अरु उनकी परिछा लेन कौं यह कही जु तुम्हारी कविता की बहुत बड़ाई सुनी है, तातें कछु हमारौ हू बर्नन करो। ता पर सूरदास जू या बात के उत्तर कौं एक ही पद्धि सुनायौ। सो सुनि पातसाह सहित सब सभा रीझि गई। सो वह पद—

मन मैं रह्यौ नाहिन ठौर॥
नंदनंदन अच्युत कैसें आनियै उर और॥
द्यौस जागत चलत चितवत, सपन सोवत राति।
हृदै तें वह मदन मूरति, छिन न इत उत जाति॥

कहत कथा अनेक ऊधौ, लोक लोभ दिखाइ।
कहा करहिं हित प्रेम पूरन, घट न सिंधु समाय ।।
स्याम गात सरोज आनन, ललित मधुर सहास।
'सूर' ऐसे रूप कौं, यह मरत लोचन प्यास ।।
—नागर समुच्चय, पृ. २१२-२१६

उपर्युक्त उल्लेख के प्रसंग १ में 'गुसांई जी' शब्द का प्रयोग हुआ है। वल्लभ संप्रदाय में 'आचार्य जी' का अभिप्राय श्री वल्लभाचार्य जी से और 'गुसाईं जी' का अभिप्राय आचार्य जी के पुत्र श्री विट्ठलनाथ जी से लिया जाता है, वैसे साधारणतया सभी आचार्यों को 'गुसाईं जी' कहते हैं। प्रसंग १ में यदि 'गुसाईं जी' के स्थान पर 'आचार्य जी' शब्द होते, तब उक्त उल्लेख को अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त किसी अन्य सूरदास से संबंधित होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इस प्रसंग के सूरदास भी अष्टछापी सूरदास की भाँति दोनों नेत्रों से हीन थे; उनको भी भागवत के अनुसार भगवत् यश वर्णन करने का आदेश दिया गया था और उन्होंने अपनी प्रथम रचना के रूप में श्री कृष्ण की जन्म-बधाई वाला वही पद गाया था, जो सदा से अष्टछापी सूरदास का ही समझा जाता है। प्रसंग २ में सूरदास के अंधत्व और प्रसंग ३ में उनकी अकबर से भेंट का उल्लेख है। ये सभी बातें अष्टछापी सूरदास से ही संबधित मानी जाती हैं। वल्लभ संप्रदाय का वार्ता साहित्य इसका प्रमाण है। उपर्युक्त उल्लेख में वार्ताओं से जो थोड़ी भिन्नता है, उसका कारण नागरीदास जी की असावधानी हो सकती है।

यदि इस सूरदास को गोसाईं विट्ठलनाथ जी का सेवक कोई अन्य सूरदास मानें, तो इसका उल्लेख 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' अथवा वल्लभ संप्रदायी अन्य रचनाओं में होना चाहिए। वार्ता साहित्य में एक नाम के कई भक्तों का उल्लेख मिलता है, किंतु उनके प्रासंगिक चरित्र भिन्न हैं। सूरदास नामक किसी अन्य व्यक्ति का कोई उल्लेख वार्ताओं में प्राप्त नहीं है। अष्टछापी सूरदास के समकालीन एक दूसरे भक्त कवि सूरदास मदनमोहन थे, जो वल्लभ संप्रदायी न होने से वार्ताओं में स्थान नहीं पा सके हैं। वे नागरीदास जी के कथनानुसार न तो विट्ठलनाथ जी के कृपापात्र थे और न दोनों नेत्रों से हीन ही थे। उनके चारित्रिक प्रसंग और नाम-छाप भी अष्टछापी सूरदास से भिन्न हैं। नागरीदास जी ने भी उनके प्रसंगों का पृथक् कथन किया है। इससे सिद्ध होता है, नागरीदास कृत 'पद प्रसंग माला' के होली-गायन में जिस 'व्रजवासी बालक' का उल्लेख है, वह अष्टछापी सूरदास के अतिरिक्त कोई अन्य 'सूरज कवि' नहीं है।

भाव, भाषा और शैली की समानता—

डा० ब्रजेश्वर वर्मा का मत है, सूरसागर की तुलना में "सारावली की भाषा आदि से अंत तक तत्सम-प्रधान रही है। इसमें ब्रजभाषा की स्वाभाविकता और माधुर्य का अत्यंत अभाव है, अतः इसकी भाषा-शैली इसके सूरदास की कृति होने में संदेह की पुष्टि करती है[1]।" सूरसागर और सारावली की सावधानी से तुलना करने पर डा० वर्मा का उपर्युक्त संदेह निराधार ज्ञात होता है। पहली बात यह है, डा० वर्मा का निष्कर्ष बंबई-सारावली के पाठ पर आधारित है, जिसे मूल पाठ के विरुद्ध तत्सम-प्रधान कर दिया गया है, जैसा हम गत पृष्ठों में लिख चुके हैं। दूसरी बात यह है, कवि की समस्त रचनाओं का भाव, भाषा और शैली में समान होना आवश्यक भी नहीं है। गोस्वामी तुलसीदास जी की रचनाएँ इसका प्रमाण हैं। रामचरित मानस, गीतावली, कवितावली आदि में भाव, भाषा, शैली की कितनी असमानताएँ हैं, यह लिखने की आवश्यकता नहीं है। हरिऔध जी कृत 'चुभते चौपदे,' 'प्रिय प्रवास' और 'रस-कलस' में असमानताएँ तो और भी अधिक हैं। किंतु इनके लिए उक्त कवियों की रचनाओं में संदेह नहीं किया जाता है। हमारे मतानुसार सारावली और सूरसागर में इस प्रकार की असमानताएँ इतनी कम हैं कि उनके कारण सारावली की प्रामाणिकता में संदेह होना ही नहीं चाहिये। डा० दीनदयाल जी गुप्त के मतानुसार 'सारावली में भाषा का वही ब्रज-रूप और वही लालित्य है, जो सूरसागर में है[2]।' सूरसागर और कीर्तन के पदों से सारावली के पाठ का मिलान करने पर भाव, भाषा और शैली संबंधी आश्चर्यजनक समानता दिखलाई देती है।

दोनों के कथा-प्रसंग, मार्मिक स्थल, रस-संचार और काव्यगत दृष्टिकोण में भी पर्याप्त समानता है। सारावली की सांप्रदायिक मान्यता भी सूरसागर के अनुकूल है। यह लिखा जा चुका है, सारावली होली के बृहद गान के रूप में कथित रचना है। होली-गान का वही रूप सूरसागर और कीर्तन के अनेक पदों में भी विद्यमान है। दोनों में एक मास तक चलने वाले होली-उत्सव, 'फगुवा,' होली-खेल के आवश्यक साधन और गान-वाद्य की सामग्री में भी समानता है। इन सब बातों से ये रचनाएँ एक ही कवि की सिद्ध होती हैं। हमने इस प्रकार की समानताओं की एक लंबी सूची बनाई है, जिसे पूरी देना संभव नहीं है।

---

१. सूरदास, पृ० ७७

२. अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय, पृ० २८६

यहाँ पर थोड़े उदाहरण दिये जाते हैं, जिनसे भाव, भाषा और शैली की समानता पर अच्छा प्रकाश पड़ेगा—

सारावली	सूरसागर
मत्स्यावतार	
इतनौ कहि हरि नृप देखत ही भए छु अंतर्ध्यान ।६५।	यहै कहि भए अंतरधान तब मत्स्य प्रभु······४४३
नृसिंहावतार	
प्रगट भये नरहरि बपु धरि हरि...१२३	निकसे हरि नरहरि बपु धारि...४२१
असुर बल डारयौ नखन बिदारी...१२४	नख-प्रहार तिहिं उदर बिदारयौ...४२१
	नख सौं हृदय बिदारयौ ...४२३
	नखन सौं उदर डारयौ बिदारी...४२५
मन्वंतर कौ राज दियौ तुम ...१३१	करौ मन्वंतर लौं राज ...४२१
निर्गुन सगुन होय मैं देख्यौ, तो सौ भक्त न पाऊँ ।१३२।	निर्गुन सगुन होइ मैं देख्यौ, तो सौ भक्त कहुँ नहिं पैहौं ।।४२४।।
सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, तोकूँ कबहूँ न त्यागूँ ।१३३।	सुनि प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, जब लगि तब सिर छत्र न दैहौं ।।
अंतरधान भये हरि तहाँ तें ...१३५	तब नरहरि भए अंतरधान ...४२१
रामावतार	
घुटुरुन चलत कनक-आँगन में...१६६	घुटुरुन चलत स्याम मनि-आँगन...११३
उठि बैठे, दतुवन लै आई, करी मुखारी स्याम ।।१७०।।	दतुवन लै दुहुँ करी मुखारी...४०७
खंजन नैन बीच नासा-पुट, राजत यह अनुहार ।	चंचल नैन चहुँ दिसि चितवत जुग खंजन अनुहारि ।
खंजन युग मनौं लरत लराई, कीर बुझावत रार ।१७५।	मनहुँ परस्पर करत लराई, कीर बचाई रारि ।
नासा के बेसर में मोती, बरन बिराजत चार ।	बेसरि के मुकुता में झांई, बरन बिराजत चारि ।
मनौं जीव-सनि-सुक एक ह्वै, बाढ़े रबि के द्वार ।।१७६।।	मानौ सुर-गुरु-सुक्र-भौमि-सनि चमकत चंद्र मँझारि ।।
लीन्हौं अंस खेंच भृगुपति कौ, अपने रूप समायौ ।२३८।	छिन इतने भृगुपति प्रताप बल करषि हृदय धरि लीन्हौं ।५५६।

सारावली	सूरसागर
प्रवेस कियौ कपि, लंका नगर मँझार२७६	कपि पहुँच्यौ नगर मँझार ...५१६
अमरन-सरन उदार कल्पतरु, रामचंद्र रनधीर...२६०	परम गंभीर रनधीर दसरथ-तनय जानि असरन-सरन 'सूर' के प्रभु कौं५५५
'सूर' समुद्र की बूंद भई यह, कवि बरनन कहा करि है।३१५।	'सूर' सिंधु की बूंद भई मिलि, मति गति दृष्टि हमारी ॥

वामनावतार

हय-गज-हेम-रतन पाटंबर ३३७	हय-गय-रतन-हेम पाटंबर......६२२
तीन पैंड़ बसुधा हम पावै ...३३६	तीन पैग बसुधा दै मोकौं......।४४१।
जब नृप भुग्र संकल्प कियौ है, लागे देह पसारन ।३३६।	जब ही उदक दियौ बलि राजा, बामन देह पसारी...।४४१।
नापौ देह हमारी द्विजवर ३४१	स्वामी मापौ देह हमारी......४४१

कृष्णावतार

तब देवकी दीन है भाख्यौ, नृप कूँ नाहिं पतीजै ।३७१।	मनसा-बाचा कहत कर्मना, नृप कबहू न पतीजै ।६२७।
पहुँचै आय महर-मंदिर मैं, नैंक न संका कीन्हीं ।३७७।	पहुँचे जाइ महर-मंदिर मैं, मनहिं न संका कीन्हीं ॥३२२॥
बालक धरि लैकै सुरदेवी, सुरत गवन की कीन्हीं ।३७७।	बालक धरि लै सुरदेवी कौं, आइ 'सूर' मधुपुरी ठए ।६२६।
यह कन्या मोहिं बकस बीर तू, कीजै मो मन-भायौ ।३८०।	यह कन्या मोहिं बकसि बंधु तू, दासी जानि कर दीन्ही ॥
कंस बंस कौ नास करत है, कहा समुझि रिसयानी ।३८१।	कूर कंस मम बंस बिनासन, समुझे बिन रिस कीन्हीं ।
	असुर कंस अपबंस बिनासन, सिर ऊपर बैठे रखवारे ।६२८।
पटकत सिला गई आकासै, कंस प्रतीति न मानी ।३८२।	पटकति सिला गई आकासहिं, दोउ भुज चरन लगाई ।
भई अकास-बानी, सुरदेवी, कंस यहाँ अब आई ।	गगन गई बोली सुरदेवी, कंस मृत्यु नियराई ॥
तेरौ सत्रु प्रगट कहूँ ब्रज मैं, काहु लख्यौ नहिं जाई ।३८३।	तैसेहिं कंस काल उपज्यौ है, ब्रज मैं जादवराई ।६२२।

सारावली	सूरसागर
जैसैं मीन करत जल-क्रीडा, जल मैं रहत समाई ।३८४।	जैसे मीन जाल में क्रीड़त, गनै न आपु लखाई ।
छम अपराध देवकी मेरौ, लिख्यौ न मेटयौ जाई । मै अपराध किये सिसु मारे, कर जोरैं दिखराई ।।३८६	मैं अपराध कियौ सिसु मारे, लिख्यौ न मेटयौ जाई ।
पुन गृह जाय सेज पर सोयौ, नैंक नींद नहिं आवै ।	चारि पहरि सुख-सेज परे निसि, नैंकु नींद नहिं आई ।।
देस देस के दूत बुलाये, सबहिन मतौ सुनावै ।।३८७।।	काकै सत्रु जनम लीनौं है, बूझै मतौ बुझाई ।।६२२।।

जन्मोत्सव

परवत सात तिलन के कीन्हें, रतनन ओघ मिलायौ ।३९३।	अति आनंद नंद रसभीने, परवत सात रतन के कीने ।।६५०।।
द्वै लख धेनु दई तेहि अवसर, बहुनहिं दान दिवायौ ।३९२।	कामधेनु हैं नेकु न हीनी, द्वै लख धेनु द्विजन कौं दीनी ।।६५०।।
जसुमति कूख सराहि, बलैया लैत सबै ब्रज-नार ।४०२।	जसुमति धन यह कोखि, जहाँ रहे बावन रे ।६४६।

ढाढ़ी

निज कुल वृद्ध जानि इक ढाढ़ी, गोवर्धन तैं आयौ ।।४०६।।	'नंदजू' मेरे मन आनंद भयौ, मैं गोवर्धन तैं आयौ । हौं लौं तुमरे घर कौ ढाढ़ी, सूरदास मेरौ नाउँ ।।६७३।।
बाजत हुरुक-मजीरा-नूपुर, नाना भाँति नँचायौ ।४०७।	ढाढ़ी औ ढाढ़िन गावैं, ठाढ़े हुरुक बजावैं ।६४९।
जिन जाँचे ब्रजपति उदार अति, जाचक फिर न कहावै ।४१२।	नंद पौरि जो जाँचनि आए, बहुरौ फिर जाचक न कहाए ।।६५०।।

पूतना-बध

प्रथम पूतना कंस पठाई, अति सुंदर बपु धारयौ ।	प्रथम कंस पूतना पठाई......६६६

सारावली	सूरसागर
घसिकै गरल, लगाय उरोजन, कपट न कोऊ निहार्यौ ॥१४५॥	घसिकै गरल, चढ़ाय उरोजनि ६६७
लीन्हें खेंच प्रान विष-पय युत, देह विकल तन कीनौं ॥४१६॥	पय संग प्रान खेंचि हरि लीन्हौं,
छाँड़ि-छाँड़ि कहि परी धरनि पर ... ।	गई मुरछाइ परी धरनी पर ६७०
जोजन डेढ़ विटप-बेली सब चूर-चूर करि डारे ।४१७।	जोजन डेढ परी मुरझाई ॥६६९॥

शकटासुर बध

सारावली	सूरसागर
कंस नृपति नें सकट बुलायौ, लै कर बीरा दीन्हौं ।	यह सुनि नृपति हरषि मन कीन्हों, तुरतहि बीरा दीन्हौ ।
आय नंद-गृह द्वार नगर में, रूप सकट कौ कीन्हौ ॥४२४॥	गयौ सिर नाय, मन गरबहि बढाय कै, सकट कौ रूप धर असुर लीन्हौ।६७९।
मारी लात स्याम पलना मैं, पर्यौ धरनि भहराय ।४२५।	नैकु फटक्यौ लात, सबद भयौ आघात गिर्यौ भहरात सकटा संहार्यौ।६८०।

तृणावृत बध

सारावली	सूरसागर
तनावर्त बिपरीत महाखल, सो नृपराय पठायौ ।	अति विपरीत तृनावर्त आयौ ।
चक्रबात ह्वै सकल घोस मैं, रज-धूँधर ह्वै छायौ ॥४२८॥	बात चक्र मिस ब्रज ऊपर परि, नंद पौरि के भीतर आयौ ॥
चल्यौ उठाय गोपाल व्योम मैं, तब हरि कंठ गहायौ ।	पौढ़े स्याम अकेले आँगन, लेत उड़्यौ आकास चढ़ायौ ।
पटक्यौ सिला खरिक के आगैं, छिन निरजीव करायौ ॥४२९॥	मार्यौ असुर सिला सौं पटक्यौ, आपु चढ़्यौ ता ऊपर आयौ ॥६९५॥

कागासुर बध

सारावली	सूरसागर
कंठ चाप बहु बार फिरायौ, पटक्यौ नृप के पास ।	कंठ चापि बहु बारि फिरायौ, गहि पटक्यौ नृप पास पर्यौ ।
एक जाम मैं बचन कह्यौ यह, प्रगट भयौ तुव नास ।४३५।	बीतैं जाम बोलि तब आयौ, सुनहु कंस तब आइ सर्यौ ॥६७७॥

[illegible]	सूरसागर
घुटुरुन चलना	
[illegible] है, [illegible] जननि बुलावैं ।	इतहीं नंद बुलाइ लेत हैं, उतहीं जननि बुलावै री ।
[illegible] हँसि-हँसि मोद बढ़ावत ।४२८।	दंपति होड़ करत आपस में, स्याम खिलौना कीनी री ।।७१६।।
चंद्र दर्शन	
मधु-मेवा-पकवान मिठाई, विविध [illegible] ।४३९।	मधु-मेवा-पकवान मिठाई, आपु न खैहै तोहि खवावै ।।८०९।।
	मधु मेवा-पकवान मिठाई, माँगि लेहु मेरे छौना ।८१०।।
माखन-चोरी	
[illegible] माखन, [illegible] न जाई ।४४३।	दधि-माखन चोरी करि लै हरि ग्वाल सखा संग खात ।।८९०।।
[illegible] ग्वालिनी [illegible] ।४४४।।	ग्वालिन उरहन के मिस आई ...९२१
[illegible] भाजन, [illegible] ।४४६।	भाजन फोरि, दही सब डार्यौ, माखन कीच मचायौ ।।९६०।।
ऊखल बंधन	
जानी बहुत खिजन जननी कौं, हरि पकराई दीनी ।।४५०।।	जब जानी जननी अकुलानी, आपु बँधाये सारंग-पानी ।।१००९।।
ऊखल दाम बँधे हरि जाने, गोपी देखन धाई ।४५१।	कव के बाँधे ऊखल स्याम ।
[illegible] स्याम दामोदर, [illegible] कीन्ही ।	ताही दिन तें प्रगट 'सूर' यह, प्रभु दामोदर नाम ।।९७९।।
[illegible] सुत कुबेर के, [illegible] दीन्ही ।।४५२।।	दुमनि जान दोउ सुत कुबेर के, ऊखल आपु बंधायौ ।।९६४।।
[illegible] भये भुव, [illegible] भहराय ।	तरु दोउ धरनि गिरे भहराय ।
[illegible], सुनि धाये ब्रजराज ।।४५३।।	जर सहित अरराइ कै, आघात सब्द सुनाय ।।१०१५।।

सारावली	सूरसागर
वृंदाबन प्रस्थान	
बहु उत्पात रहत हैं गोकुल, नित प्रति कंस पठायौ ॥४६०॥	गोकुल होत उपद्रव नितप्रति, बसिए वृंदाबन में जाई ।
अब वृंदाबन जाय रहेंगे, जहाँ बीरुध त्रिन पानी ।	सब गोपन मिलि सकटा साजे,
चले गोप अति ओप बिराजै, बोलत हो-हो बानी ॥४६१॥	सबहिन के मन मैं यह आई ॥१०२०॥
वत्स हरण	
छाकै खात, खबावत ग्वालन, सुंदर जमुना तीर ।	वृंदा बिपिन बिसद जमुना तट, सुचि ज्यौनार बनाई ।
ग्वाल मंडली मध्य बिराजत, हरि-हलधर दोउ वीर ॥४६३॥	मध्य गोपाल मंडली मोहन, छाक बाँटि कै लेत ॥१०३४॥
दावानल पान	
दावानल कौ पान कीयौ······४७४	दावानल कौ पान कीन्हौ······१११६
चीर हरण	
लैके चीर कदंब चढ़े हरि······४७६	लै सब चीर कदँब चढ़ि बैठे··१४०६
	लै कर चीर कदंब पर बैठे··१४१२
गोबर्धन लीला	
गोबर्धन धरि सब ब्रज राख्यौ···४७८	स्याम धरयौ गिरि गोबर्धन कर ······१५५७
वरुण लीला	
बरुन-लोक मैं गये कृपा करि···४८१	बरुन-लोक तबही प्रभु आए···१६०२
यज्ञ पत्नी लीला	
जज्ञ करत ब्राह्मण मथुरा के, ओदक स्याम मँगायौ ॥४८२॥	हरि कह्यौ जज्ञ करत जहाँ बाम्हन । जाहु उनहिं ढिग भोजन माँगन ॥ ॥१४१८॥

सारावली	सूरसागर
नारद कंस वार्ता	
नारद आय कह्यौ नृप सौं यह, कौन नींद तू सोवै ।।४८५।।	नारद कह्यौ सुनो हो राव ।
करो उपाय बचौ जो चाहौ, मेरौ बचन प्रमानौ ।।४८७।।	कहा बैठे, कछु करहु उपाव ।।३५४०।।
मथुरा गमन	
आगै मिल्यौ सुदामा माली, फूल माल पहिराई ।।५०१।।	बीच माली मिल्यौ, दौरि चरनन परयौ, पहुप-माला स्याम कंठ धारी ।।३६६१।।
कंस बध	
कच गहि आप बहुत वह खैंच्यौ, हरि जमुना लौं आये ।।५२८।।	केस गहे पुहुमी घिसटायौ । डारि जमुन के बीच नहायौ ।।३७१३।।
बसुदेव देवकी मुक्ति	
बंधन छोर पिता-माता के, अस्तुति कर सिर नायौ ।।५२९।।	मात पिता बंध तें छोर, 'सूर' सुजस जग गाए ।।३७०४।।
गुरु दक्षिणा	
गुरु दक्षिना दैन जब लागे, गुरु-पतनी यह माँग्यौ ।	गुरु सों कह्यौ जोरि कर दोऊ, दछिना कहौ सो देऊँ मँगाई ।
बालक बह्यौ सिंधु मैं हमरौ, सो नित प्रति चित लाग्यौ ।५३९।	गुरु पतनी कह्यौ पुत्र हमारे, मृतक भये सो देहु जिवाई ।।
लै बालक गुरु आगे धरि कै, रामकृष्ण सुखरासी ।	आन दिये गुरु सुत जमपुर तै, तब गुरुदेव असीस सुनाई ।
आज्ञा लै मधुपुरी सिधारे, परब्रह्म अबिनासी ।५४२।	'सूरदास' प्रभु आइ मधपुरी, ऊधौ कौं ब्रज दियौ पठाई ।४०२९।
कुब्जा गृह गमन	
कुबिजा के घर आप पधारे···५४४	हित कुबिजा के धाम पधारे···३७२७
उद्धव का ब्रज-गमन	
बेग जाव ब्रज मो आज्ञा तें, ब्रजबासिन सुख देहौ ।।५४८।।	ऊधौ बेग ही ब्रज जाहु । श्री मुख कह्यौ जाहु तुम ब्रज कौं, मिलइ जाइ ब्रज लोग ।।४०४३।।

सारावली	सूरसागर
पती लिखो आप कर मोहन, ब्रजवासी सब लोग ।	स्याम कर पत्री लिखी बनाइ ।
मात जसोदा, पिता नंदजू, बाढ़्यौ बिरह बियोग ॥५५०॥	नंदबाबा सों बिनयकर, कर जोर जसोदा माय ॥४०५४॥
धौरी धूमरि, कारी काजर, मैन मजीठी गाय ।	तौलौं दुखी होन नहिं पावैं, धौरी धूमरि गाय ॥४०५६॥
ताकूं बहुत राखियो नीके, उन पोष्यौ पै प्याय ॥५५१॥	वह गुन हमकौं कहा बिसरि हैं, बड़े किये पय प्याय ।
बन मैं मित्र हमारौ एक है, हम ही सौ है रूप ।५५२।	मित्र एक बन बसत हमारे, ताहि मिलैं सुख पाइहो ।
ताकौं पूजि बहुत सिर नइयो, अरु कीजो परनाम ।५५३।	करि करि समाधान नीकी विधि, ताकौं माथौ नाइहो ॥
पीतांबर अपनौ पहिरायौ, श्रुति कुंडल पहिराये ।	अपनौ हो रथ तुरत मँगायौ, दियौ तुरत पलनाय ।
अपने रथ बैठाय प्रीति सौं, उद्धव ब्रज पधराये ॥५५५॥	अपने अंग अभूषन करि करि, आपुन ही पहिराय ॥
	अपने मुकट पीतांबर अपनौ, देत सबै सुख पाय ॥४०६९॥
तब एक सखी कह्यौ री तू सुनि सुफलक-सुत फिर आयौ ।	बहुरि सखी सुफलक-सुत आयौ, परयौ संदेह जिय गाढ़ौ ।
प्राण गये लै, पिंड दैन कौं, देह लैन मन भायौ ॥५६२॥	प्राण हमारे तबहिं लै गयौ, अब केहि कारन आयौ ॥४०९९॥
पहिलै ही इन हती पूतना, बाँधे बलि कौ दान ।	पय प्यावत पूतना संहारी, छले जु बलि से दानि ।
सूपनखा-ताड़का संहारी, स्याम सहज यह बान ॥५६९॥	सूपनखा नासिका निपाती, 'सूर' सदा यह बानि ॥४४५७॥
तब ऊधौ कह्यौ धन्य धन्य तुम, धन्य-धन्य ब्रज-नार ।	धन्य ग्वाल गोपी जु खिलाये, गोदहि सारंग-पानी ।
तुम्हरे सुबस सदा हरि खेल्यौ, ब्रज मैं करत बिहार ॥५७६॥	धनि ब्रज भूमि, धन्य वृंदाबन, जहँ अविनासी आए ॥४७०९॥

सारावली	सूरसागर
मोहि खोजत षट मास बीत गये, तबहुँ न आयौ अंत ॥५८१॥	समुझि परी षटमास बितीते, कहाँ हुतौ हौं आयौ ॥४७६७॥
तब हरि कह्यौ सुनौ ऊधौ जू ब्रजवासी तन मोर ।	सुनि ऊधौ, मोहिं नैंकु न बिसरत वे ब्रजवासी लोग ॥४७७३॥
तिनकों सपन कबहुँ नहिं छाँड़ौं, सत्य कहत हौं तोर ॥५८३॥	ऊधौ, मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।४७७५

रुक्मिणी हरण

महा सिंह निज भाग लेत ज्यों, पाछे दौरे स्वान ॥६३७॥	सूरजदास सिंह बलि अपनौ, लीन्हों दलकि सृगालहिं ॥४८००॥

सत्यभामा विवाह

एक दिवस मृगया कौं निकस्यौ, कंठ महामनि लाय ।	इक दिन तासु अनुज लै सो मनि, गयौ अखेटक काज ।
तब उन मारि सिंह गहि लीन्हौ, रीछ मिल्यौ एक ताहि ॥६४४॥	ताकौं मारि सिंह मनि लै गयौ, सिंह हतौ रिछराज ॥४८०९॥

भीष्म प्रतिज्ञा

करी प्रतिज्ञा कह्यौ भीष्म मुख, पुन-पुन देव मनाऊँ ।	आजु जो हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ ।
जो तुम्हरे कर सर न गहाऊँ, गंगा-सुत न कहाऊँ ॥७८०॥	तौ लाजौं गंगा जननी कौं, सांतुन-सुत न कहाऊँ ॥२७०॥

सुदामा चरित्र

बन मैं बहु वर्षा जब आई, ताकौं सुधि करि लैहौ ।	एक दिवस बरसा भई बन मैं, रह गए ताहीं ठौर ।
गुरु आये आपुन कौं बोलत, मंत्र थकायौ मैं हौं ॥८१२॥	इनकी कृपा भयौ नहिं मोहि स्रम, गुरु आए भए भोर ।
ता दिन की यह कथा तुम्हारी, बिसरत नाहिंन मोय ॥८१३॥	सो दिन मोहि बिसरत न सुदामा, जो कीन्हौ उपकार ॥४८६३॥

सारावली	सूरसागर

भूमा पर कृपा

सारावली	सूरसागर
जब सुत भयौ कह्यौ ब्राह्मण नें, अर्जुन गये गृह ताह ।	पुत्र प्रसूत समय जब आयौ । विप्रार्जुन सौं आइ सुनायौ ॥
सर-पिंजर रोप्यौ चहुँ दिस तैं, जहाँ पवन नहिं जाइ ॥८५१॥	अर्जुन तब सर-पिंजर कियौ । पवन सचार रहन नहि दियौ ॥
तव सुत गयौ देह कौं लैकें, दरसन भयौ न ताय ।	बालक ह्वै भयौ अंतर्धान । अर्जुन ह्वै रह्यौ चकित गमान ॥
अति ही क्रोध भयौ ब्राह्मण कौं, बहुत बक्यौ बिलखाय ॥८५२॥	विप्र-नारि तब गारी दई । कही प्रतिज्ञा का ह्वै गई ॥
तब अर्जुन ढूँढ़न कौं निकसे, तीन लोक फिर आयौ ।८५३।	मै देख्यौ तिहि त्रिभुवन जाई । पै ताकी कहुँ सुधि नहिं पाई ॥
लै निज संग चले पच्छिम कौं, लोकालोक सुहायौ ॥८५४॥	हरि रथ पर अर्जुन बैठाय । पहुँचे लोकालोकहि जाय ॥
बहुत निबड़तम देखि चक्रधर, धरचौ हाथ समुझायौ ॥८५५॥	अंधकार मग नहिं दरसाये, चक्र सुदरसन आगैं कियौ ॥
लै दस पुत्र द्वारिका आये, दीन्हे विप्र बुलाय ।	तहँ तैं पुनि द्वारावति आये । ब्राह्मण के बालक पहुँचाए ॥
कीन्हौं दुःख दूर अर्जुन कौ, महिमा प्रगट दिखाय ॥८५६॥	हरि अर्जुन कों निज जन जान, निज स्वरूप अपनौ दरसायौ ॥४६२७॥

पुनः ब्रज बिहार

सारावली	सूरसागर
जब जसुमति नें ऊखल बाँधे, हमहीं दीन्हें छोर ।८६०।	जसुमति जब ऊखल सौं बाँध्यौ, हमही छोरयौ जाइ ॥२११७॥
गहि बहियाँ लै चले स्यामघन, सघन कुंज के द्वार ।८६६।	सघन कुंज, अलि पुंज जहाँ हरि, किसलय सेज बनाई ।
आलिंगन, चुंबन, परिरंभन, भेंटत भरि अंकवार ॥८६७॥	आलिंगन, चुंबन, परिरभन, दियौ सुरत रस पूरौ ॥
श्रम जल बिंदु इंदु-आनन पर...८६८	छिटक रही श्रम बिंदु बदन पर...... ॥३४४४॥

सारावली	सूरसागर
बेग चलौ वृषभान-नंदिनी, बोलत नंदकुमार ।।९२१।।	राधे बोलत नंदकिसोर ।३३८३।
जब तें नाम सुन्यौ स्रवनन तुव, रैन नींद नहिं आवै ।।९२८।।	जब तें स्रवन सुन्यौ तेरौ नाम ।
हा-हा हरि राधा-राधा रटत, जपत मंत्र दुरदाम ।	तब तें हा राधा, हा राधा, हरि यहै मंत्र जपत दुरदाम ।
बिरह-बिराग महाजोगी ज्यौं, बीतत हैं सब जाम ।।९२९।।	बिरह-बियोग महाजोगी ज्यौं, जागत ही बीतत जुग जाम ।।
कबहूँ किसलै-सेज सँवारत, तेरे ही हित लाल ।९३०।	कबहुँक किसलै पीठ रुचिर रचि,
कालिंद्री तट, बिमल कदम तर, करत बदन तुव ध्यान ।।९३३।।	कबहुँक गान करत गुनग्राम ।।३३९९।।

बसंत और होली

प्रथम बसंत पंचमी सुभ दिन, मंगलचार बधाये ।।१०२४।।	प्रथम बसंत पंचमी लीला, 'सूरदास' जस गावै ।।
कियौ बसंत खेल वृंदाबन, अदभुत फाग मचाय ।।१०४७।।	खेलत फागु रसिक ब्रज जनिता, सुंदर स्याम तमाल ।।
उत स्यामा, इत सखा-मंडली, उत हरि, इत ब्रज-नार ।१०४९।	इत श्री राधा, उत श्री गिरधर, इत गोपी, उत ग्वाल ।।३४७२।।
रुंज, मुरज, ढप, ताल, बाँसुरी, झालर कौ झंकार ।।१०७२।।	फूले बजावैं मृदंग, महुवरि, ढप ताल, चंग सरस रस ही डोल ।
बाजत बीन, रबाब, किंनरी, अमृतकुंडली यंत्र ।	बाँसुरी, चंग, अमृतकुंडली, उपंग, सतन हित फूल डोल ।।
सुर सुरमंडल जलतरंग मिलि, करत मोहनी मंत्र ।।१०७३।।	फूले बजावै किंनरि, ताल, भेरी घहरैं अपार.........
बिबिध पखावज, आवज संचित, बिच-बिच मधुर उपंग ।१०७४।	फूले बजावें मुरज, रुंज, झाँझ, झालरनि पुंज......३५३५
	डिमडिम, पटह, ढोल, डफ, बीना, मृदंग, चंग अरु तार······

सारावली	सूरसागर
कसताल, कठताल बजावत, शृंग, मधुर मुँहचंग। मधुर खंजरी, पटह, प्रवन मिल··· १०७५॥	इक बीना, इक किंनरि, इक मुरली, इक उपंग, इक तुंबुर, इक रवाब॥ इक पटह, इक गोमुख, इक आवज, इक झल्लरि, इक अमृतकुंडली, इक डफ कर धारे॥ ॥३५२४॥

उपर्युक्त उदाहरण सारावली के आरंभ से अंत तक के छंदों में से संकलित किये गये हैं। इनके सन्मुख सूरदास कृत पदों के वे उदाहरण हैं, जो भाव, भाषा, शैली में सारावली से समानता रखते हैं। इस आश्चर्यजनक समानता से यही सिद्ध होता है कि दोनों रचनाएँ एक ही कवि की है।

'हरि' नाम का प्रयोग

बल्लभ संप्रदाय में परब्रह्म श्रीकृष्ण के अनेक नाम प्रचलित है। बल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भागवत में से ऐसे एक हजार नाम चुनकर 'श्रीपुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की थी[1]। इन नामों में श्रीकृष्ण, हरि, गिरिधर, गोपाल, श्याम, माधव आदि विशेष प्रचलित हैं। पुरुषोत्तम सहस्रनाम का आरंभ 'श्रीकृष्ण' नाम से और उसका अंत 'हरि' नाम से हुआ है[2]। इससे ज्ञात होता है, 'श्रीकृष्ण' और 'हरि' इन दो नामों की महिमा अधिक है। सूरदास को 'हरि' नाम विशेष प्रिय था। उन्होंने कीर्तन के पदों में सैकड़ों बार 'हरि' नाम का प्रयोग किया है। सूरसागर का आरंभिक पद 'हरि' की बंदना का है। इसके बाद उसमें सैकड़ों ऐसे पद हैं, जिनमें हरि नाम का प्रचुरता प्रयोग मिलता है। 'सारावली' का आरंभिक पद भी 'हरि' की वंदना का है। यह रचना 'हरि' के ही होली खेलने से आरंभ होती है और इसमें स्थान-स्थान पर 'हरि' नाम का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। चौबीस अवतारों के वर्णन में तो 'हरि' नाम इतनी अधिकता से मिलता है, कि वह प्रत्येक अवतार से ही नहीं, वरन् प्रत्येक प्रसंग से भी संबंधित है। इससे भी सिद्ध होता है कि सूरसागर और सारावली एक ही कवि की रचनाएँ हैं।

---

१. पुराणपुरुषो विष्णुः पुरुषोत्तम उच्यते।
नाम्नां सहस्रं वक्ष्यामि तस्य भागवतोद्धृतम्॥

२. श्रीकृष्णः सच्चिदानंदो नित्यलीला विनोद कृत। ××
इतीदं कीर्तनीयस्य हरेर्नाम सहस्रकम्॥

'तत्व' और 'लीलाभेद' का स्पष्टीकरण—

'सारावली' के रचयिता की घोषणा है,—"मैं कर्म, योग, ज्ञान और उपासना के भ्रम में 'भरमाया' हुआ था। मेरे गुरुदेव श्री वल्लभाचार्य जी ने मूझे 'तत्व' और 'लीलाभेद' बतलाया। (इससे मेरे भ्रम का निवारण हुआ), उसी दिन से मैंने हरि-लीला का गायन किया[१]।" यहाँ पर इस बात का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है, श्री वल्लभाचार्य जी ने कौन सा 'तत्व' और 'लीलाभेद' बतलाया था।

वार्ता से ज्ञात होता है, सूरदास को शरण में लेते समय आचार्य जी ने सर्व प्रथम उन्हें 'नाम' सुनाया, अर्थात् अष्टाक्षर मंत्र से दीक्षित किया; फिर उनसे 'समर्पन' करवाया, अर्थात् परब्रह्म श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए संसार की अहंता-ममता का त्याग करा दीनतापूर्वक उनके चरणों में आत्म-समर्पण कराया। इसके उपरांत उनको भागवत-दशमस्कंध की अनुक्रमणिका सुनाई[२]। आत्म-समर्पण से सूरदास को नवधा भक्ति सिद्ध हुई। दशमस्कंध की अनुक्रमणिका से उन्हें प्रेमलक्षणा भक्ति की प्राप्ति हुई। इस प्रकार दशधा भक्ति का यह 'तत्व' सूरदास को श्री वल्लभाचार्य जी से प्राप्त हुआ था।

वार्ता में आगे लिखा गया है,—"ता पाछें श्री आचार्य जी ने सूरदास कू 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' सुनायौ। तब सगरे श्री भागवत की लीला सूरदास के हृदय में स्फुरी[३]।" वल्लभाचार्य जी ने श्रीमद्भागवत के सार रूप से 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की है। इसमें भागवत के स्कंधानुक्रम से भगवान् श्रीकृष्ण के शुद्धाद्वैत सिद्धांत प्रतिपादक एक सहस्र नामों का उल्लेख है। ये नाम भागवत की दशविध लीलाओं के सूचक हैं, अतः 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' में समस्त भागवत का सार आ गया है। इसीलिए इसे श्रीमद्भागवत का 'सार समुच्चय' कहा गया है, जैसा इसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है[४]। 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' से सूरदास को भागवत की समस्त लीलाओं का ज्ञान प्राप्त हो गया। यही 'लीलाभेद' सूरदास को आचार्य जी की कृपा से प्राप्त हुआ था।

---

१. सारावली, छंद ११०२–११०३

२. सूरदास की वार्ता, पृ० १२

३. सूरदास की वार्ता, पृ० १७

४. इति श्री भागवत सार समुच्चये वैश्वानरोक्तं पुरुषोत्तम नाम सहस्र स्तोत्रं संपूर्णम् ॥

सारावली में उल्लिखित 'तत्व' और 'लीलाभेद' का यह संक्षिप्त रूपगत स्पष्टीकरण है। इसे हृदयंगम किये बिना, न तो सारावली का महत्व समझा जा सकता है और न इसकी प्रामाणिकता के संबंध में निश्चित धारणा ही बनाई जा सकती है।

आचार्य जी से 'तत्व' और 'लीलाभेद' का ज्ञान प्राप्त कर सूरदास ने श्रीमद्भागवत की कथा का दो प्रकार से गायन किया है। एक कथात्मक रूप में, जिसे 'सूरसागर' कहते हैं; दूसरे उसके सिद्धांतात्मक सर्ग–विसर्गादि दशविध लीलाओं के सार रूप से, जिसे 'सारावली' कहते हैं। इसके 'सारावली' नाम की यही सार्थकता है। इसकी रचना में सूरदास ने आचार्य जी कृत 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' का विशेष रूप से आधार लिया है।

पुरुषोत्तम सहस्रनाम की रचना का हेतु

वार्ता के उल्लेख से स्पष्ट है कि आचार्य जी ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना द्वारा सूरदास को भागवत की लीलाओं का सार बतलाया था। इससे इसकी रचना सूरदास के हेतु सिद्ध होती है, न कि उनके ज्येष्ठ पुत्र गो० गोपीनाथ जी के लिए, जैसा कुछ विद्वानों का मत है। वल्लभ संप्रदाय में ऐसी अनुश्रुति प्रचलित है कि गोपीनाथ जी समग्र भागवत का पाठ करने के अनन्तर भोजन किया करते थे। इससे उनके भोजन में बहुत विलंब हो जाता था; प्रायः उनको एक बार ही भोजन करना पड़ता था। उनके भोजन के पश्चात् प्रसाद ग्रहण करने वाली उनकी धर्मपत्नी को इससे असुविधा होती थी। इसलिए आचार्य जी ने भागवत के सार रूप में 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना कर गोपीनाथ जी को आदेश दिया कि वे इसके पाठ के अनन्तर भोजन कर लिया करें। यदि इस अनुश्रुति को माना जाता है, तो वार्ता का उल्लेख अप्रामाणिक होता है।

वार्ता और अनुश्रुति की संगति के लिए यह समझा जा सकता है कि सूरदास को दीक्षित करने के समय आचार्य जी ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' को सूत्र रूप में सूरदास को बतलाया था। इसकी व्यवस्थित रूप में रचना बाद में हुई होगी। इसीलिए इसका रचना-काल सं० १५८० के लगभग माना जाता है। कुछ भी हो, यह निश्चित है कि आचार्य जी ने भागवत के सार रूप में 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की थी। इसका सर्व प्रथम लाभ सूरदास को मिला और बाद में गोपीनाथ जी इससे लाभान्वित हुए।

पुरुषोत्तम सहस्रनाम और सारावली

'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आरंभ में ही बतलाया गया है, अनेक नामो से प्रवर्तित श्रीकृष्ण की अनत लीलाएँ हैं, जो भागवत में कहीं पर प्रकट और कहीं पर गूढ हैं—

अनंता एव कृष्णस्य लीला नाम प्रवर्तिकाः।
उक्ता भागवते गूढाः प्रकटा अपि कुत्रचित्तः ॥३॥

श्री आचार्य जी ने भागवत के स्वरचित भाष्य 'सुबोधिनी' में इन प्रकट लीलाओं के साथ ही साथ अनेक गूढ़ लीलाओं का भी विवेचन किया है। उनके सार रूप श्रीकृष्ण के १०७५ नामों से युक्त उन्होंने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' की रचना की है। उन्होने भागवत की दशविध लीलाओं के अनुकूल १००० और अन्य पुराणों से इन्हीं लीलाओं के पोषक ७५ नामों को इसमें सम्मिलित किया है। इसका उल्लेख 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के अत मे इस प्रकार हुआ है—

इतीदं कीर्तनीयस्य हरेर्नाम सहस्रकम्।
पंचसप्तति विस्तीर्णं पुराणान्तर भाषितम् ॥२४६॥

इन १०७५ नामों द्वारा जहाँ आचार्य जी ने 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' मे भागवत की स्पष्ट और अस्पष्ट लीलाओं का तत्व बतलाया है, वहाँ उन्होंने अन्य पुराणों की लीलाओं को भी स्वीकार किया है। पुरुषोत्तम सहस्रनाम के आधार पर रचित 'सारावली' में इसीलिए भागवत की प्रकट लीलाओं के साथ ही साथ वे गूढ़ लीलाएँ भी है, जो भागवत के कथात्मक रूप सूरसागर में स्पष्ट रूप से नहीं आसकी हैं। इसीलिए 'सारावली' में भागवत के अतिरिक्त अन्य पुराणों का भी आधार मिलता है। सूर-साहित्य के जो विद्वान 'सारावली' को सूरसागर का सूचीपत्र मानते हैं, वे सूरदास की इन दोनों रचनाओं की कतिपय असमानताओं के कारण 'सारावली' की प्रामाणिकता में ही संदेह करने लगते है। इस स्पष्टीकरण से सिद्ध है, ये असमानताएँ ही सारावली की विशेषता। वास्तविक बात यह है, सारावली न तो सूरसागर का सार है और न इसका सूचीपत्र। यह 'पुरुषोत्तम सहस्रनाम' के आधार पर रचित सूरदास की एक स्वतन्त्र रचना है। इसकी यह मौलिकता अथवा विशेषता इसे संदिग्ध रचना होने की अपेक्षा सूरदास की प्रामाणिक रचना ही सिद्ध करती है।

हरिलीला-दर्शन का अभिप्राय—

'सारावली' के रचयिता द्वारा हरि-लीला का दर्शन होने की निम्न-लिखित स्वीकारोक्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय है—

गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन ।
सिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन ॥१००२॥

सूर-साहित्य के सभी विद्वान उपर्युक्त छंद का अन्वय इस प्रकार करते है,—"गुरु-प्रसाद यह दरसन, सरसठ बरस प्रवीन होत । सिव विधान बहुत दिन तप करेउ, तऊ पार नहिं लीन ॥" किंतु इसकी दूसरी पंक्ति के अर्थ के संबंध मे बडा मतभेद है । डा० ब्रजेश्वर वर्मा और डा० मुंशीराम शर्मा उक्त पंक्ति का यह अभिप्राय समझते हैं कि वल्लभाचार्य जी से दीक्षा लेने से पहले सूरदास शैव थे ! उन्होने बहुत दिनों तक शिव जी का विधान पूर्वक तप किया था, किंतु उनको सफलता नहीं मिली थी[1] ।

सूरदास के आरंभिक जीवन से संबंधित यह भ्रमात्मक कल्पना उक्त पंक्ति का ग़लत अर्थ करने से की जाती है । वास्तव मे इसका अर्थ इस प्रकार होना चाहिए,—"गुरु-प्रसाद से यह दर्शन सरसठ वर्ष की प्रवीन (अवस्था मे) हो रहा है । (इस दर्शन के लिए) शिव जी ने विधान पूर्वक बहुत दिनों तक तप किया, तब भी पार नही पाया ।" इस प्रकार अर्थ करने से सूरदास द्वारा शिव जी की तपस्या करने और उसमें असफल होने का प्रश्न ही उत्पन्न नही होता है । इस अर्थ की सगति सारावली के पूर्वापर क्रम से भी होती है; जब कि उक्त विद्वानों का अभिप्राय असंगत ज्ञात होता है । इसके लिए उक्त प्रसग के पूर्वापर छंदो पर विचार करना आवश्यक है ।

सारावली में छंद संख्या ९९० तक परब्रह्म श्रीकृष्ण की उस 'नित्य निकुंज लीला' का वर्णन है, जिसे 'हरि-लीला' भी कहा गया है । डा० मंशीराम जी शर्मा ने अपने विद्वतापूर्ण ग्रंथ "भारतीय साधना और सूर-साहित्य" मे इस हरि-लीला का विस्तृत विवेचन किया है । छंद संख्या ९९० के तत्काल पश्चात् छंद सं० ९९१ में इस नित्य विहार के कथन करने में शेष जी का मन मूढ़ हो जाने का उल्लेख है । फिर छंद ९९४ में इसके 'बखान' करने में ब्रह्मा, शिव,

---

१. सूरदास पृ० ६८, ७७ । सूर-मीमांसा, पृ० ५९
सूर-सौरभ (च. सं.) पृ० ३

षडानन और शेष के पार न पाने; छंद ६६६ में सरस्वती के थकित होने, छद ६६६ में ब्रह्मा, शिव और गणेश का वहाँ पर प्रवेश न होने और छद १००१ मे मुनियों के मन-मधुप का इसके रस के लिए सदा लोभी होने और ब्रह्मा-शिव-देवी से सदा सेवित होने का उल्लेख किया गया है। इस भूमिका के बाद सख्या १००२ का उपर्युक्त छंद है। इसका अन्यथा अर्थ करने से न केवल वह भूमिका ही निरर्थक होती है, वरन् आगे का भी क्रम भंग होता है।

'सूरदास की वार्ता' से स्पष्ट है कि वल्लभाचार्य जी से दीक्षा लेने से पहिले सूरदास को 'हरि-लीला' का ज्ञान नहीं था[1]। वे विनय-वैराग्य के पदो की रचना करते हुए विरक्त जीवन बिताते थे। उस समय वे शैव थे, इसका कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। आचार्य जी ने उनको भक्ति का 'तत्व' और 'लीलाभेद' बतलाया। इससे वे श्रीकृष्ण की विविध लीलाओं के पदो का गायन करने लगे। आचार्य जी के पुत्र गोसांई विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी की सेवा-प्रणाली का इस प्रकार विस्तार किया कि इस कलि-काल में ही उन्होंने श्रीकृष्ण की समस्त लीलाओं को साक्षात् कर दिखाया। इसीलिए नाभा जी ने उनके विषय में कहा है,—"वल्लभ-सुत बल भजन कें, कलिजुग में द्वापर कियौ।"

आचार्य जी के बतलाए हुए मार्ग पर वर्षो तक चलने से और गोसाई जी द्वारा प्रवर्तित सेवा-भावना से संबंधित नित्योत्सवों और वर्षोत्सवों में निरतर सम्मिलित होने से सूरदास हरि-लीला में 'प्रवीन' हो चुके थे। यह प्रवीणता उनको आचार्य जी और गोसाईं जी की कृपा से प्राप्त हुई थी, इसीलिए उन्होंने इसे 'गुरु-प्रसाद' बतलाया है। वार्ता से सिद्ध है, सूरदास श्री आचार्य जी और श्री गोसाईं जी दोनों में गुरु-भाव रखते थे[2]। यह लिखने की आवश्यकता नहीं है, इस लीला-भावना का समुचित आनंद प्राप्त करने के लिए इसमें 'प्रवीन' होने की नितांत आवश्यकता है। इसके महत्व को प्रकट करने के लिए ही उन्होंने अनेक देवताओं का दृष्टांत दिया है।

इस विषय का विवेचन करते हुए 'सूर-निर्णय' मे लिखा गया है—'शिवजी को भी यह लीला दुर्लभ है, इस बात को सूरदास ने राम-चरित्र आदि कई स्थानों पर अन्यत्र भी कहा है[3]।"इसके प्रमाण स्वरूप सारावली के छद १४७

---

१ सूरदास जी वार्ता, पृ० ११
२. ,, ,, पृ० ५७-६०
३ सूर-निर्णय, पृ० १४०

९ भी उद्धृत किये गये हैं। इस पर डा० मुंशीराम जी शर्मा का मत है–
योक्ति अलंकार द्वारा कहने की यह एक विशिष्ट शैली है। इसे तथ्य रूप
नहीं किया जा सकता [1]।" इस संबंध में हमारा निवेदन है कि सारावली
प्रकार का कथन पूर्वोक्त दो छंदों में ही नहीं है, वरन् आदि से अंत
अनेक छंदों में अनेक प्रकार से किया गया है। विविध प्रसंगों पर किये
प्रकार के सभी कथनों को 'अतिशयोक्ति अलंकार' कह कर तथ्य के
समझना कदापि उचित नहीं है। हम यहाँ पर ऐसे कई उद्धरण उपस्थित
जिनमें विभिन्न देवताओं के 'पार न पाने' का कथन किया गया है—

नाभि-कमल नारायन कौ, सो वेद गरभ अवतार।
नाभि-कमल में बहुतहिं भटक्यौ, तऊ न पायौ पार ॥११॥
बासुदेव, यौं कहत वेद में, है पूरन अवतार।
सेष सहसमुख रटत निरंतर, तऊ न पावत पार ॥१४६॥
बेनु बजाय रास बन कीन्हौं, अति आनँद दरसायौ।
लीला कथत सहसमुख, तौऊ अज हू पार न पायौ ॥५७३॥
तब हरि कह्यौ, जन्म मेरे बहु, सेष न पावै पार।
भुव की रज, नभ के तारे सब, तितने हैं अवतार ॥६०९॥
कहूँ व्याह की केलि परम सुख, निरखत मुनि सचु पायौ।
सेष सहस मुख पार न पावैं, कछु इक 'सूर' जु गायौ ॥६८१॥
सिब-बिरंचि-सनकादि महामुनि, सेस-सुरेस-दिनेस।
इन सबहिन मिलि पार न पायौ, द्वारावती नरेस ॥६८४॥
यह निकुंज कौ बरनन करिबे, वेद रहे पचि हार।
नेति-नेति कर कह्यौ सहस विधि, तौऊ न पायौ पार ॥१००६॥

उपर्युक्त छंदों से डा० मुंशीराम शर्मा के विरुद्ध हमारे मत का ही समर्थन
। डा० शर्मा जी अपने मत पर जोर देते हुए पुनः लिखते हैं—
'इसके अतिरिक्त यह भी विचारणीय है कि क्या सूर अपने आपको
जैसे उच्च कोटि के देव की समकक्षता में रख सकते है? और वह
यह कह कर नीचा दिखाने के लिये कि मुझे हरि-दर्शन हो गये, शिव
ही हुए। सांप्रदायिक महत्ता को यह तो छीछालेदर करना है[2]।

ीय साधना और सूर-साहित्य पृ० ४५९, २. वही, पृ० ४५९

आश्चर्य है, डा० मुंशीराम जी जैसे विद्वान ऐसा थोथा तर्क उपस्थित करते हैं ! यहाँ पर सूरदास का शिव जी के समकक्ष होने अथवा उन्हें नीचा दिखाने की बात नहीं है, बल्कि भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का गूढ़ रहस्य और उसे स्पष्ट करने वाले गुरु का महत्व बतलाना है। निर्गुण और सगुण दोनों प्रकार के भक्ति-संप्रदायों में गुरु का सर्वोपरि महत्व माना गया है। उनमें गुरु को साक्षात् भगवान् के समान माना जाता है। सगुण भक्त हरिराम जी व्यास का कथन है—

"गुरु गोबिंद एक समान।" अथवा "जैसे गुरु, तैसे गोपाल।"

निर्गुण भक्त कबीर तो गुरु को भगवान् से भी बढ़कर बतलाते हैं—

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय ?
बलिहारी गुरु आपकी, जिन गोबिंद दियौ मिलाय ॥
तीन लोक नौ खंड में, गुरु ते बड़ा न कोय।
करता करैं न करि सकै, गुरू करै सो होय ॥

सूरदास भी गुरु और भगवान् में कोई अंतर नहीं मानते थे, यह वार्ता के कथन से स्पष्ट है। उन्होंने सूरसागर के अनेक पदों में गुरु-महिमा का कथन किया है। ऐसे कुछ पदों को स्वयं डा० मुंशीराम जी ने भी अपने ग्रंथ में उद्धृत किया है[1]। कहने की आवश्यकता नहीं है, गुरु की पूर्ण कृपा से ही सूरदास को हरिलीला-दर्शन का वह अलौकिक आनंद प्राप्त हो सका, जो शिवजी सहित अनेक देवी-देवताओं के लिए भी कठिन था। इसमें सूरदास का महत्व नहीं है, बल्कि गुरु का महत्व है। वैसे सूरदास ने स्वयं कुछ संकोच के साथ स्वीकार किया है कि हरि-लीला का पार सरस्वती नहीं पा सकती है, किंतु सतगुरु की कृपा के प्रसाद से वे कुछ कह सके हैं—

हरि-लीला अवतार पार सारद नहिं पावै।
सतगुरु-कृपा प्रसाद, कछुक तातैं कहि आवै[2] ॥

इसी प्रकार का कथन सारावली में भी किया गया है—

सेस सहस्र मुख पार न पावैं, कछु एक 'सूर' जु गायौ ॥८८१॥

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सारावली के छंद १००२ के साक्ष्य से सूरदास के प्रारंभिक जीवन में उनके शैव मतावलंबी होने की कल्पना निराधार

१ भारतीय साधना और सूर साहित्य, पृ० २४२—२४३
२ ना० प्र० सभा का सूरसागर, पृ० ४३१, पद ११९०

है। यह लिखा जा चुका है, इस प्रकार की कल्पना उक्त छंद मे आये हुए 'सिव-बिधान' शब्दों का गलत अर्थ करने से की गई है। यहाँ यह बतलाना आवश्यक है, सारावली के सबसे पुराने मुद्रित संस्करण 'रागकल्पद्रुम' मे 'सिव बिधान' के स्थान पर 'बिधाता' पाठ है[1]। यदि इस पाठ को स्वीकार किया जाय, तब उक्त अर्थ के अनुसार क्या सूरदास को ब्रह्मा-पूजक माना जावेगा ? 'रागकल्पद्रुम' के पाठ मे तो सूरदास के शैव होने की कल्पना का गढ ही ढह जाता है !

हमने सारावली के प्रस्तुत संस्करण में अधिकतर 'रागकल्पद्रुम' का अनुसरण करते हुए भी 'बिधाता' पाठ स्वीकार नहीं किया है। इसका कारण यह है, 'रागकल्पद्रुम' मे भी पुराने गुजराती अनुवाद में 'शिव विधान' पाठ है। फिर 'बिधाता' पाठ मे एक मात्रा कम होती है, जिससे छंदोभंग होता है। ऐसा होते हुए भी 'रागकल्पद्रुम' के पाठ से यह तो मानना ही होगा कि सारावली की प्राचीन प्रतियो में 'शिव' और 'बिधाता' दोनों पाठ होते थे। एक मात्रा की न्यूनाधिकता गेय छंदों में क्षम्य होती है, क्योंकि गायक अपने आलाप मे इसे स्वयं ठीक कर लेता है।

कथा-वस्तु की रूप-रेखा—

सारावली की कथा से ज्ञात होता है, इसे होली के बृहत् गान के रूप में रचा गया है। इसमें सर्व प्रथम सृष्टि-रचना का वर्णन है। इसके उपरात परब्रह्म श्रीकृष्ण के चौबीस अवतारों की कथा है। इसमें रामावतार और कृष्णावतार का विस्तार पूर्वक तथा अन्य अवतारों का संक्षिप्त रूप मे कथन हुआ है। रामचरित्र का वर्णन वाल्मीकि रामायण और ब्रह्मांड पुराण के आधार पर है। इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

> यहि बिधि बन-उपबन बहु कीड़ा, करी राम सुखदाई।
> बालमीक मुनि कही कृपा कर, कछु एक 'सूर' जो गाई ॥१९२॥
> ब्याह-केलि-सुख बरनन कीन्हौं, मुनि बालमीक अपार।
> सो सुख 'सूर' कह्यौ, बहु कीरत जगत करी बिस्तार ॥२३२॥
> तब महादेव कृपा करिकै, यह चरित्र कियौ बिस्तार।
> सो ब्रह्मांड पुरान व्यास मुनि, कियौ बदन उच्चार ॥१५२॥

---

१ सारावली, पृ० ८० छंद १००२ की पाद-टिप्पणी देखिये।

राम-चरित्र की परंपरा के संबंध में बतलाया गया है कि सर्व प्रथम महादेव ने कृपा पूर्वक राम-चरित्र का विस्तार किया। उसे व्यास मुनि ने ब्रह्मांड पुराण में कहा है। बालमीकि ने सप्तर्षियों से राम-मंत्र प्राप्त कर रामायण की रचना की। इसे वशिष्ठ मुनि ने रामचंद्र से कहा और काकभुशुंड ने गरुड़ से कहा। इसी को सूरदास ने अपनी रसना की पवित्रता, और भव-जंजाल के निवारण के लिए संक्षेप में कहा है[1]—

कछु संक्षेप 'सूर' अब बरनत, लघुमति दुरबल बाल।
यह रसना पावन के कारन, मेटन भव-जंजाल ॥१५७॥

रामावतार के पश्चात् कृष्णावतार का कथन अत्यंत विस्तार पूर्वक किया गया है। कृष्ण-चरित्र की परंपरा बतलाते हुए कहा गया है, स्वयं श्री हरि ने इसे नारद और सनकादिक ऋषियों से निज बैकुंठ में कहा था। शेष ने सनत्कुमार से सुन कर उसे सांख्यायन से कहा। बृहस्पति ने उसे मैत्रेय से कहा। उसी का वर्णन व्यास मुनि ने पुराणों में किया है। शुकदेव मुनि ने उसे ही परीक्षित राजा को सुनाया था[2]।

अवतारों के अनंतर श्रीकृष्ण के नित्य विहार का वर्णन है। इसी के अन्तर्गत पुष्टि संप्रदायी सेवा-भावना के अनुकूल नित्योत्सव और वर्षोत्सव का कथन किया गया है। यह विषय सांप्रदायिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। इसमें वल्लभ संप्रदायी सेवा-भावना का वह रूप है, जो इसे 'सैद्धांतिक रचना' की संज्ञा प्रदान करता है। इसे 'सारावली' में 'सरस संवत्सर लीला' कहा गया है। इसका आरंभ शुद्धाद्वैत सिद्धांतानुसार इस प्रकार हुआ है—

सदा बिलास करत गोकुल में, धन-धन जसुमति मात।
ज्यौं दीपक तें दीपक कीन्हौं, भये द्वारका-नाथ ॥८६९॥

वल्लभ संप्रदायी सेवा-क्रम का आरंभ जन्माष्टमी से होता है। सारावली में भी इसे जन्म-बधाई के मांगलिक प्रसंग से ही आरंभ किया गया है[3]। इसके बाद नित्योत्सव और वर्षोत्सव की सेवा-भावना का क्रमबद्ध वर्णन है, जिसमें बाल चरित्र, दान, मान, रास, बसंत, होली, डोल और वन विहार की

---

१ छंद १५२–१५७

२. छंद १०६०–१०६५

३. छंद ८७०–८७१

आनंददायी लीलाओं का सरस वर्णन है। मान के प्रसंग में दृष्टकूट कथन है[१], जो गूढ शृंगार वर्णन की एक विशिष्ट शैली के अनुसार है। इस प्रकार यह रचना वल्लभ संप्रदायी सेवा-भावना और सरस काव्य-कौशल की एक महत्वपूर्ण कृति है, जिसका रचयिता अष्टछापी सूरदास ही हो सकता है।

होली-गान—

सारावली का संपूर्ण कथानक होली-खेल के रूपक में कथित है, अत यह एक बृहत् होली-गान की रचना है। इसका आरंभ और अंत 'खेलत यहि विधि हरि होरी' की टेक से हुआ है और बीच में भी इसे कई बार दुहराया गया है। इसमें सर्व प्रथम होली खेलते हुए परब्रह्म की नित्य विहार के रूप में उसकी शाश्वत लीला का वर्णन है[२]। फिर सृष्टि-विस्तार की इच्छा होने पर उसके द्वारा पुरुष-प्रकृति, तीन गुण और अट्ठाईस तत्व प्रकट हुए[३]। नारायण के नाभि-कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, जिनको सृष्टि-रचना करने की आज्ञा दी गई। ब्रह्मा ने होली खेलते हुए चौदह लोक, नौ खंड, सात द्वीप, बन, उपबन और पर्वतों की रचना कर डाली, जिनमें बसंत ऋतु अपने पूर्ण वैभव के साथ फूल उठी[४]। फिर होली-खेल में ही देव-दानव आपस में युद्ध करने लगे और उनके शस्त्र रूपी पिचकारियों से रुधिर की रंगीन धारा बहने लगी। होली खेल में ही श्री हरि ने असुरों को मार दिया और देवताओं को राज्य दिया। होली के 'फगुवा' में उन्होंने एक को पाताल और दूसरे को इंद्रासन दिया। चंद्रमा को 'फगुवा' में चंद्रलोक दिया गया और उसे सब नक्षत्रों का राजा बनाया गया। अन्य ग्रहों को भी यथोचित 'फगुवा' चुकाया गया। इसके बाद बतलाया है, जब-जब हरि-माया से दानव प्रगट होते हैं, तब-तब श्रीकृष्ण अवतार धारण कर उनका संहार करते हैं। इस प्रकार उनके चौबीस अवतार हुए हैं[५]।

रामावतार के वर्णन में होली-खेल का पुनः उल्लेख है। लंका-विजय के पश्चात् जब श्रीराम अयोध्या के राज-सिंहासन पर बैठ कर धर्म राज्य करने लगे, तब वे बसंतागम जान कर जनक-सुता पर अनुरक्त हुए और प्रेम-प्रवाह प्रकट करते हुए होली खेलने लगे[६]। इसके बाद राम-सीता के विहार का वर्णन है[७]।

---

१. छंद ६३७–६६६ २. छंद १–४ ३. छंद ५–१० ४. छंद ११–२५, ५. छंद २६–३६, ६. छंद ३०६, ७. छंद ३१०–३१४.

कृष्णावतार की कथा के अंत में सूर्य-ग्रहण के अवसर पर समस्त याद० का कुरुक्षेत्र में जाना बतलाया गया है। वहाँ पर उस अवसर पर अनेक ब्रजवा० भी गये थे। उनमें श्री कृष्ण के बाल्य-काल की प्रेमिकाएँ गोपियाँ और रा० भी थीं। रुक्मिणी को राधा का परिचय देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा था कि इन्हो० रास-केलि की क्रीड़ा के अतिरिक्त मुझे होली-खेल भी खिलाया था [1]।

इसके बाद वृंदावन के नित्य विहार के प्रसंग में निकुंज-लीला का वर्ण० करते हुए जो बसंत-खेल का विस्तार पूर्वक कथन हुआ है, उसमें होली खेल संबंधित सभी सामग्री का समावेश है। विहार-वर्णन के अन्तर्गत ललिता द्वा० ललित बीन बजा कर प्रिया-प्रियतम को रिझाने का उल्लेख है। इसी प्रसंग ० छत्तीस रागनियों का इस प्रकार नामोल्लेख हुआ है—

ललिता ललित बजाय रिझावत, मधुर बीन कर लीने।
जान प्रभात राग पंचम, षट, मालकोष रसभीने ॥१०१२॥
सुर हिंडोल, मेघ, मालव पुनि, सारंग सुर, नट जान।
सुर सावँत, भूपाली, ईमन, करत कान्हरौ गान ॥१०१३॥
ऊंच अड़ाने के सुर सुनियत, निपट नायकी लीन।
करत बिहार मधुर केदारौ, सकल सुरन सुख दीन ॥१०१४॥
सोरठ, गौड़, मलार सोहावत, भैरव, ललित बजायौ।
मधुर बिलास, सुनत बेलाबल, दंपति अलि सुख पायौ ॥१०१५॥
देवगिरी, देसाक, देव पुनि, गौरी, श्री सुख-रास।
जैतश्री अरु पूर्बी, टोड़ी, आसावरि सुख-रास ॥१०१६॥
रामकली, गुनकली, केतकौ, सुर सुघराई गावे।
जैजैवंती जगतमोहनी, सुर सों बीन बजावे ॥१०१७॥
सूहा सरस मिलत प्रीतम सुखसिंधु बीर रस मान्यौ।
जान प्रभात प्रभाती गायौ, भोर भयौ दोउ जान्यौ ॥१०१८॥

बसंतोत्सव में भी ललिता के आग्रह से राधा-कृष्ण द्वारा वृंदावन मे अद्भुत फाग खेलने और गोपियों को 'फगुवा' देने का वर्णन किया गया है[2]। इसके पश्चात् दैनिक क्रम से पूरे एक मास के होली-उत्सव का कथन है[3]। सर्व प्रथम होली के 'डांड़ारोपण' की विधि पूर्वक क्रिया होने का उल्लेख किया गया

१. छंद ७१०–७२६.   २. छंद १०२४–१०५०,   ३. छंद १०५१–१०८५.

है । इसके अनंतर कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से पूर्णमासी तक चलने वाले होलिका उत्सव का सरस कथन है । इसी के अंतर्गत शुक्ला पंचमी के वर्णन में विविध वाद्य यंत्रों का इस प्रकार नामोल्लेख हुआ है—

पाँचैं पंच सब्द करि गाजे, सजि बाजित्र अपार ।
चंग, मुरज, ढप, ताल, बाँसुरी, झालर की झंकार ।।१०७२।।
बाजत बीन, रबाब, किन्नरी, अमृतकुंडली यंत्र ।
सुर सुरमंडल, जलतरंग मिलि, करत मोहनी मंत्र ।।१०७३।।
बिबिध पखावज, आवज संचित, बिच-बिच मधुर उपंग ।
सुर सहनाई, सरस सरंगी, उपजत तान-तरंग ।।१०७४।।
कंसताल, करताल बजावत, श्रुंग, मधुर मुँहचंग ।
मधुर खंजरी, पटह, प्रनव मिलि, सुख पावत रतभंग ।।१०७५।।
निपट तफेरी स्रवनन धुनि सुनि, धीर न रहै ब्रज-बाल ।
मधुर नाद मुरली की सुनिकै, भेटैं स्याम तमाल ।।१०७६।।

पूर्णमासी के अनंतर यशोदा द्वारा अपने लाल को 'डोल' झुलाने और गोपियों को 'फगुवा' देने का उल्लेख किया गया है[1] । अंत में संकर्षण के मुख की ज्वाला से उत्पन्न अपार अग्नि द्वारा होलिका-दहन के रूप में समस्त ब्रह्मांडों के जल कर नष्ट हो जाने का इस प्रकार कथन किया गया है—

संकरषन के बदन अनल तैं, उपजी अगिन अपार ।
सकल ब्रह्मांड तुरत तेज सौं, मानों होरी दई पजार ।।१०९९।।

अंत में 'खेलत यहि बिधि हरि होरी' की टेक है । इस वर्णन से ज्ञात होता है, 'सारावली' की रचना होली के विशद गान के रूप में हुई है । इसमें विविध प्रसंगों पर होली-खेल की बात को बार-बार दुहराया गया है । इससे होली-गान का वातावरण आदि से अंत तक एक सा बना रहता है ।

परब्रह्म की नित्य लीला—

'सारावली' के कथानक की रूपरेखा और उसमें परब्रह्म श्री हरि के होली खेलने की कल्पना के कथन से यह ज्ञात होता है कि इसमें परब्रह्म की उस शाश्वत लीला का उल्लेख है, जो अनादि काल से नित्य अखंड रूप में होती रहती है । इस लीला द्वारा परब्रह्म स्वेच्छा से अखिल ब्रह्मांड की रचना करता है, उसका पालन-पोषण और वृद्धि-विस्तार करता है, फिर उसे नष्ट भी कर

1 छंद १०८६.

डालता है परब्रह्म की इस नित्य लीला को सारावली मे हरि लीला कहा गया है। श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुसार इस लीला का कोई विशिष्ट प्रयोजन नही होता है; लीला का प्रयोजन तो लीला ही है[1]।

हरि-लीला का साधारण अर्थ है, 'प्रभु का खेल'। सारावली में इसे होली-खेल के रूपक द्वारा समझाया गया है। परब्रह्म की इस लीला को होली-खेल की उपमा देना बडा ही उपयुक्त और युक्तियुक्त है। जिस प्रकार होली खेलने में ऊँच-नीच का भेद-भाव और संकीर्ण भावना का अभाव होता है, उसी प्रकार सृष्टि के रचना-क्रम, पालन एवं विनाश में परब्रह्म श्री हरि सब के साथ एक सा खेल खेलता है। होली के 'फगुवा' की तरह ही वह सब को यथा योग्य उपहार भी प्रदान करता है।

सारावली के आरंभ में ही बतलाया गया है कि अविगत, आदि, अनत, पूर्णब्रह्म, प्रगट पुरुषोत्तम की यह लीला आदि-अजर वृंदावन की कुंज-लताओ मे होती रहती है। वहाँ पर प्रिया-प्रियतम का नित्य विहार होता है और निगम रूप भृंग वहाँ गुंजार किया करते हैं। वहाँ की पावन सलिला कालिंद्री के रत्न-जटित तट पर सारस, हंस, चकोर, मोर, कोकिल और कीर कूजते रहते हैं। वहाँ के मणिमय गोवर्धन पर्वत की सघन कंदराओं में गोपिका-मंडल के बीच वे निशि-दिन विहार किया करते हैं[2]।

वल्लभ संप्रदाय के अनुसार श्री कृष्ण ही परब्रह्म हैं, जिनको सारावली में अधिकतर 'हरि' और कहीं-कहीं पर नारायण, विष्णु, माधव, राम और श्याम आदि नामों से स्पष्ट किया गया है। पुराणों में जिन २४ अवतारों का उल्लेख है, वे सारावली और वल्लभ संप्रदाय के अनुसार सब के सब श्री कृष्ण के ही अवतार है। सारावली में बतलाया गया है, जब-जब हरि की माया मे पृथ्वी पर दानव प्रकट होते हैं, तब-तब उनके संहार के लिए श्री कृष्ण भी अवतार धारण करते है। इस प्रकार उनके २४ अवतार हुए है—

जब-जब हरि-माया तै दानव प्रगट भये है आय ॥३५॥
तब-तब धरि अवतार कृष्ण ने, कीनौं असुर संहार।
सो चौबीस रूप निज कहियत, बरनन करत विचार ॥३६॥

---

१. न हि लीलायां किञ्चित प्रयोजनमस्ति। लीलाया एव प्रयोजनत्वात्।
—ब्रह्मसूत्र, अणु भाष्य, अध्याय २, सूत्र ३३

२. छंद १–४

अथवा

ऐसे अनेक अवतार कृष्ण के, को कवि सकै बखान ।
सोई 'सूरदास' ने बरने, जो कहे व्यास पुरान ।।३५३।।

ये २४ अवतार श्रीकृष्ण के मुख्य रूप हैं, वरना अवतार तो अनंत हैं। वे इतने अधिक हैं, जितने रज के कण, अथवा नभ के तारे। मथुरा से द्वारका जाते समय श्रीकृष्ण ने मुचुकंद से स्वयं यह बात कही थी—

तब हरि कह्यौ, जन्म मेरे बहु, सेष न पावै पार ।
भुव की रज, नभ के तारे सब, तितने हैं अवतार ।।६०९।।
अब कहियैं द्वापर जुग सुन नृप, बासुदेव मम रूप ।
भूतल-भार उतारन आयौ, जदुकुल सुखद सरूप ।।६१०।।

परब्रह्म श्रीकृष्ण के ये अवतार कई प्रकार के है—अंशावतार, कलावतार और पूर्णावतार। इन सबका उद्देश्य पृथ्वी के भार रूप दुष्टों का दलन कर भक्तों की रक्षा करना होता है। इसका उल्लेख सारावली में कई प्रसंगों में हुआ है। श्रीकृष्णावतार की भूमिका में कहा गया है—

अंस-कला अवतार बहुत बिधि, राम-कृष्ण अवतारी ।
सदा बिहार करत ब्रजमंडल, नंद-नंदन सुखकारी ।।३६०।।
नित्य, अखंड, अनूप, अनागति, अविगत, अनघ, अनंत ।
जाकौ आदि कोऊ नहिं जानत, कोऊ न जानत अंत ।।३६१।।

नृसिंह अवतार और परशुराम अवतार के प्रसंग में भी इसी प्रकार का कथन किया गया है—

तुमहीं आदि, अखंड, अनूपम, असरन-सरन मुरार ।
देव-देव परब्रह्म परिपूरन, भक्त हेत अवतार ।।१२९।।
छत्री दुष्ट बढ़े जो भुव पर, लियौ कृष्ण अवतार ।
परसुराम ह्वै कै द्विज थापे, दूर कियौ भू-भार ।।१३९।।

इसी प्रकार नारद ने भीष्मक राजा से कहा था कि उसकी कन्या रुक्मिणी लक्ष्मी का अवतार है और वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम है—

लखि रुकमिनी कह्यौ मुनि नारद, यह कमला अवतार ।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, श्रीवसुदेव-कुमार ।।६२३।।

द्वारका में एक ही श्रीकृष्ण को अपनी समस्त रानियों के साथ एक समय विहार करते देख कर नारद ने आश्चर्य पूर्वक कहा था—

जित-तित देखौं तुम परिपूरन, आदि-अनत-अखंड ।
लीला प्रगट देव पुरुषोत्तम, व्यापक कोटि ब्रह्मांड ।।६८३।।
सिव-बिरंचि-सनकादि महामुनि, सेस-सुरेस-दिनेस ।
इन सबहिन मिलि पार न पायौ, द्वारावती-नरेस ।।६८४।।

इसी प्रकार द्वारका लीला के अंत में भी कहा गया है—

सदा बसत हरि पुरी द्वारका, बहु बिधि भोग विलासी ।
आदि अनंत-अवट्ट-अनूपम, है अबिगति-अबिनासी ।।८४६।।
कीनौं केलि बहुत बल-मोहन, भुव कौ भार उतारयौ ।
प्रगट ब्रह्म राजत द्वारावति, बेद-पुरान बिचारयौ ।।८६०।।

इस रचना के द्वितीय खंड में द्वारका-लीला के अनतर जब श्रीकृष्ण व्रज की निकुंज-लीला की याद आती है, तब वे पुनः वहाँ जाकर नित्य-लीला प्रवृत्त हो जाते हैं । यह वर्णन तो परब्रह्म की नित्य निकुंज लीला का है जिससे वल्लभ संप्रदाय के सिद्धांतो की पुष्टि होती है—

सदा बिलास करत गोकुल में, धन-धन जसुमति मात ।
ज्यौं दीपक तै दीपक कीन्हौं, भये द्वारका-नाथ ।।८६६।।

अथवा—

बाल-केलि कौतुक व्रज-आँगन, जसुमति कौं सुख दीनौं ।
तरुन रूप धरि गोपिन के हित, सब कौ चित हरि लीनौं ।।८७२।।

इसी प्रकार वृंदाबन की दिव्य निकुंजों में नित्य विहार करते हुए प्रि प्रियतम की सुरति का रहस्य इस प्रकार बतलाया गया है—

सुरति-समुद्र मगन दंपति, रस झूलत अति सुख झेल ।
निरबधि रमन, अपरिमित अच्युत, मनुज मांय बहु खेल ।।६८१।।
सुरति-समुद्र कहति दंपति कौ, निरबधि रमन अपार ।
भयौ सेष मन मूढ़, कहनि कौं राधा कृष्ण बिहार ।।६६१।।

अंत में इस रचना के उपसंहार रूप में पुनः इसी की पुष्टि करते वल्लभ संप्रदाय के अनुसार सैद्धांतिक कथन किया गया है—

वृंदावन हरि यह बिधि क्रीड़त, सदा राधिका संग ।
और न निसा कबहूँ जानत हैं, सदा रहत एक रंग ।।१०६६।।
सदा एक रस, एक अखंडित, आदि, अनादि अनूप ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, बिहरत जुगल सरूप ।।१०६९।।
सकल तत्व ब्रह्मांड देव, पुन माया सब बिधि काल ।
प्रकृति-पुरुष, श्री-पतिनारायन, सबहिं अंस गोपाल ।।११०१।।

वैष्णव भक्ति और पुष्टि संप्रदायी सेवा—

सारावली में साधारणतया वैष्णव भक्ति और विशेषतया पुष्टि संप्रदायी सेवा-भावना का समर्थन किया गया है । पहले हम वैष्णव भक्ति के उन तत्वों पर विचार करेंगे जो सारावली में उपलब्ध होते हैं । बाद में पुष्टि संप्रदायी सेवा-भावना के अनुकूल कथनों पर विचार किया जावेगा । नृसिंहावतार के अंतर्गत प्रह्लाद की कथा में बतलाया गया है, पाठशाला में विद्या पढ़ चुकने पर प्रह्लाद से उनके पिता ने पूछा—

कहौ पुत्र, तुम कहा पढ़ौ हौ ? पूछत, कहौ निसंक ।।११५।।

इसका प्रहलाद ने जो उत्तर दिया, उसमें दशधा भक्ति के प्रति उनकी सुदृढ़ आस्था वर्णित है—

स्रवन, कीरतन, स्मरन, पादरत, अरचन, बंदन, दास ।
सख्य और आत्मानिवेदन, प्रेमलच्छना जास ।।११६।।
सुनौ पिता, हौं यही पढ्यौ हूँ, और बात नहिं जानूँ ।
इनतै और मोहि जो कहियत, सो कबहूँ नहिं मानूँ ।।११७।।

भक्ति मार्ग में भक्ति का स्थान वैदिक विधि से भी ऊँचा माना जाता है । भगवान् अपने भक्तों का मान रखने के लिए वेद-वाणी को भी असत्य कर सकते हैं ! भीष्म-प्रतिज्ञा के प्रसंग में इसी भावना का कथन किया गया है—

दस दिन लरे बली गंगा-सुत, स्याम प्रतिज्ञा जानी ।
सत्य वचन हरि कियौ भक्त कौ, निगम झूँठ कर बानी ।।७८२।।
तब उन कह्यौ चरन अपने मैं राखौ, निसि-दिन ध्यान ।
मोरि प्रतिज्ञा तुम राखी है, मेटि बेद की कान ।।७८५।।

वैष्णव भक्ति-मार्ग में तिलक का बड़ा महत्व माना गया है । सारावली में भीष्म-प्रतिज्ञा के प्रसंग में बतलाया गया है, श्रीकृष्ण द्वारा चलाए हुए चक्र की ज्वाला भी भीष्म के मस्तक का तिलक देख कर शांत हो गई थी—

धरि रथ-चक्र त्याग निज कर मैं, जबहिं भीष्म पर डारी ।
सीतल भई चक्र की ज्वाला, जब सिर-तिलक निहारी ।।७८३।।

योग और ज्ञान की तुलना में भक्ति का महत्व बतलाते हुए कहा गया है, योगी और ज्ञानी ध्यान और ज्ञान पूर्वक माया के बंधनों को तोड़ते हुए भी केवल निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं, किंतु प्रेमपूर्वक भगवत्-यश गाने वाले भक्त के हृदय में साक्षात् भगवान् का निवास होता है । यह तत्व स्वयं श्रीकृष्ण ने गोपियों को इस प्रकार बतलाया था—

जोग जुक्त कर ध्यान लगावत, जोग सिद्ध कर आस ;
नेति-नेति कहि निगम बतावत, ताहि होत निरवास ।।८८८।।
जोग, सांख्य अरु ज्ञान भामिनी, माया हृदय विनास ।
प्रेम भक्त मेरौ जस गावैं, तेहि घट मेरौ बास ।।८८६।।

पुष्टि संप्रदायी सेवा-भावना का अत्यंत सुंदर और क्रमबद्ध कथन सारावली में किया गया है[1] । इसका विस्तार पूर्वक विवेचन हमारे 'सूर-निर्णय' में हुआ है[2] । यहाँ पर प्रसंग वश उसका संक्षिप्त रूप में उल्लेख किया जाता है । पुष्टिमार्गीय सेवा में नित्योत्सव और वर्षोत्सव की भावनाओं का समावेश होता है । नित्य की भावना में भगवान् श्रीकृष्ण की वे आनंदात्मक लीलाएँ हैं, जो प्रातःकाल से शयन पर्यंत नंदालय में बाल भाव से और निकुंज में किशोर भाव से होती हैं । पुष्टि संप्रदायी मंदिरों में इन लीलाओं की भावना के लिए भगवान् की आठ समय की झाँकियों का आयोजन किया गया है । इन झाँकियों का क्रम इस प्रकार है—

१. मंगला, २. शृंगार, ३. ग्वाल, ४. राजभोग
५. उत्थापन, ६. भोग, ७. संध्या आरती ८. शयन

वर्षोत्सव की भावना में श्रीकृष्ण-जन्म से डोल तक की लीलाएँ, षट्ऋतुओं के उत्सव, लौकिक तथा वैदिक पर्व और विविध जयंतियों का का समावेश हुआ है । ये सब लीलाएँ रसात्मक ब्रह्म से संबंधित होने के कारण 'सरस' होती हैं । इसी लिए सारावली में इन्हें 'सरस संवत्सर लीला' कहा गया है ।

---

१. छंद ८७०—१०६०
२. सूर-निर्णय, पृ० १३४—१४२

डा० मुंशीराम जी शर्मा 'सरस' को संवत् विशेष का नाम मानते हैं[1]। ज्योतिष ग्रंथों के अनुसार साठ संवत्सर होते हैं। उनमें 'सरस' नाम का कोई संवत् नहीं होता है। डा० शर्मा जी 'सरस' को मन्मथ संवत् का पर्याय वाची मान कर अपनी कल्पना की पुष्टि करते हैं[2]। हमारे मतानुसार 'सरस' का संवत्सर मान कर कष्ट-कल्पना करने की आवश्यकता नहीं है। यहाँ पर 'सरस' शब्द लीला का विशेषण है, अतः 'सरस संवत्सर लीला' का सीधा-सादा अर्थ 'संवत्सर की सरस लीला' करना ही उचित है।

'रसोवैसः,' 'सर्वरसः' आदि श्रुति वाक्यों के प्रमाणानुसार पुष्टि संप्रदाय में परब्रह्म को रसात्मक माना गया है। श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुसार यह रसात्मक ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो पुष्टि सम्प्रदाय के परमाराध्य देव हैं। ये रसात्मक श्रीकृष्ण अपने वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण व्यूहों में ब्रज में प्रकट हुए हैं। उन चारों व्यूहों से उन्होंने क्रमशः मोक्ष, वंशवृद्धि, धर्मोपदेश एवं संहार का कार्य किया था। धर्मी मूलस्वरूप रसात्मक श्रीकृष्ण ने केवल आनंदात्मक लीलाएँ की हैं। श्री वल्लभाचार्य जी के मतानुसार श्रीकृष्ण का धर्मी स्वरूप भाव रूप है, अतः इसकी स्थिति केवल ब्रज में और भक्तों के हृदयों में रहती है। भक्तों की भावना के अनुसार वे सदैव प्रकट होकर उनके मनोरथ पूर्ण किया करते हैं। इसीलिए उनके स्वरूप और लीलाओं को नित्य माना गया है। श्रुतियों को दिये हुए वरदान की पूर्ति के लिए इन रसात्मक श्रीकृष्ण ने ब्रज में प्रकट होकर अनेक आनंदमयी लीलाएँ की हैं। इनका वर्णन भागवत, पद्म, ब्रह्म, वाराह आदि पुराणों में और गर्गसंहिता, नारद पंचरात्र आदि में किया गया है। सारावली में भी इन्हीं लीलाओं का गायन हुआ है।

पुष्टि मार्गीय सेवा का क्रम श्रीकृष्ण जन्माष्टमी से माना जाता है, अतः सारावली में भी नित्य लीला का आरंभ जन्मोत्सव की मंगल बधाई से इस प्रकार किया गया है—

> नितप्रति मंगल रहत महर कें, नितप्रति बजत बधाई।
> नितप्रति मंगल कलस धरावत, नितप्रति वेद पढ़ाई ॥८७०॥

---

१. सूर-सौरभ (च० सं०) पृ० १२४—१२५

२. भारतीय साधना और सूर-साहित्य, पृ० ४४६

पुष्टि संप्रदाय में जन्माष्टमी के अनंतर भाद्रपद शु० ५ को चंद्रावली का और भाद्रपद शु० ८ को राधा जी का जन्मोत्सव मनाया जाता है। इसका उल्लेख सारावली में इस प्रकार किया गया है—

चंद्रावली गोप की कन्या, चंद्रभाग-गृह जाई ।।८७३।।

श्री वृषभान राय के आँगन, नितप्रति बजत बधाई ।८७१।

जन्माष्टमी से राधाष्टमी तक के पखवाड़े में पुष्टि संप्रदायी मंदिरों में बाल लीला और पलना के पदों का गायन होता है। इसका उल्लेख भी सारावली में यथा स्थान किया गया है। बाल लीला के पश्चात् दान, मान, रास और होली की भावनाओं का पुष्टि संप्रदायी सेवा-विधि में विशेष महत्व है। इनमें नंदालय और निकुंज की नित्य केलि को भी ले लिया गया है, जो पुष्टि मार्गीय भावना के अनुकूल है। सारावली मे इसका उल्लेख इस प्रकार है—

बाल-केलि क्रीड़त ब्रज-आँगन, जसुमति कौं सुख दीनौ।

तरुन रूप धरि गोपिन के हित, सब कौ चित हरि लीनौं ।।८७२।।

दान, रास और होली के उत्सवों में नित्य एवं वर्षोत्सव की सभी नुकूल भावनाओं का समावेश किया जाता है। इनसे संबंधित पुष्टि संप्रदायी कवियों के अनेक पद हैं, जो मंदिरों में यथा समय गाये जाते हैं। दान के पदों का गायन भाद्रपद शु० ११ से आश्विन कृ० ११ तक के पखवाड़े में होता है, इसलिए भी नित्य की भावनाएँ संगत सिद्ध होती हैं। आश्विन शु०१५ को रास-लीला का उत्सव होता है। रास, व्रतचर्या, जल बिहार और हिंडोला की लीलाएँ प्रसंग और भावना के अनुसार निकुंज प्रकरण के अंतर्गत आती हैं। पुष्टि संप्रदाय में दो प्रकार के रासों की मान्यता है। श्रुतियों को दिये हुए वरदान की पूर्ति के लिए गोपियों के साथ किया हुआ रास कृष्णावतार का रास कहलाता है, जब कि निकुंज का रास नित्य रास कहा जाता है। सारावली में इसी मान्यता के अनुसार दोनो प्रकार के रासों का वर्णन किया गया है।

वर्षोत्सव के सेवा-क्रम में जल-बिहार का उत्सव ग्रीष्म ऋतु में और झूला का उत्सव वर्षा ऋतु में होता है, किंतु सारावली में ये दोनों उत्सव निकुंज की नित्य केलि के शीत कालीन प्रसंग में वर्णित हैं—

औट्यौ दूध कपूर मिलायौ, लै ललिता तहाँ आई।

पहिलै स्यामा कूं अँचवायौ, पाछै पिवत कन्हाई ।।१०२१।।

कबहुँक केलि करत जमुना-जल, सुंदर सरद-तड़ाग।

कबहुँक मधुर माधुरी झूलत, आनंद अति अनुराग ।।१०२३।।

पुष्टि सम्प्रदायी सेवा में बाल-भाव की प्रधानता होने के कारण जल-विहार का उत्सव ग्रीष्म ऋतु में किया जाता है, वैसे उक्त दोनों उत्सव प्रत्येक ऋतु में होते हैं। युगल गीत और लीलाओं की संगति से भगवान् श्रीकृष्ण पौष में भी जल-विहार करते हैं। इसका उल्लेख सुबोधिनी आदि ग्रंथों में है। किशोर-भाव से शरद ऋतु के रासोत्सव में भी श्रीकृष्ण ने जल-क्रीड़ा की थी। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है, सारावली का उक्त कथन भी पुष्टि सम्प्रदाय के अनुकूल ही है।

इसके उपरांत बसंत, होली, डोल और बन-विहार की लीलाएँ सारावली में छंद संख्या १०२४ से १०८८ तक वर्णित हैं, जो पुष्टि संप्रदायी वर्षोत्सव भावना के क्रमानुसार हैं। पुष्टि संप्रदाय में बसंतोत्सव का आरंभ माघ शु० ५ से होता है। फिर यह उत्सव माघ शु० १४ तक मनाया जाता है। माघ शु०१५ को होली का डांडारोपण होता है। इसका उल्लेख सारावली में इसी क्रम से हुआ है—

प्रथम बसंत पंचमी सुभ दिन, मंगलचार बधाये।१०२४।
पहिली जान बसंत पंचमी, जसुमति बहुत खिलाये।१०३१।
होरी-डांड़ो दिवस जानिकें, अति फूले ब्रजराज।१०५१।
विप्र बुलाय बेद विधि करकैं, होरी-डांड़ौ रोप।१०५२।

डांड़ारोपण की विधि के अनंतर फाल्गुन कृ० १ से फाल्गुन शु० १५ तक का पूरा एक माह पुष्टि संप्रदाय में होलिकोत्सव का महीना माना जाता है। इस अवसर पर पुष्टि सम्प्रदायी मंदिरों में होली विषयक राग-रंग और गान-वाद्य की धूमधाम रहती है। नाना रंग के गुलाल और पिचकारियों के रंगीन जल की वर्षा से होली का वातावरण उल्लास और उमंग से भरपूर बन जाता है। सारावली में प्रतिपदा से पूर्णमासी तक दैनिक क्रमानुसार इसका विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है[1]—

परिवा प्रथम दिवस होरी कौ, नंदराय गृह आई।१०५३।
पून्यौ सुख पायौ ब्रजबासी, होरी हरख लगाय।१०८५।

होली के उपरांत वर्षोत्सव की भावना में डोल और बन-विहार की लीलाएँ होती हैं। पुष्टि संप्रदायी मंदिरों में बन-विहार की भावना से बसंत ऋतु के दोनों महीनों में फूल मंडली की झांकियों का आयोजन होता है। इनमें

१ छंद १०५३ से १०८५ तक

बन-विहार और कुंज-केलि के पद गाये जाते है। सारावली में इनका भी यथाक्रम वर्णन हुआ है। इस प्रकार पुष्टिमार्गीय नित्योत्सव और वर्षोत्सव की भावनाओं का इसमें संवत्सर की सरस लीलाओं के रूप में व्यवस्थित और क्रम-बद्ध वर्णन किया गया है। सूरदास कहते हैं, जो इन लीलाओं का गायन करते है, वे गर्भ-वास रूपी बंदीखाने में फिर नहीं आते हैं—

सरस संबतसर लीला गावै, जुगल चरन चित लावै।
गरभ-बास बंदीखाने मैं, 'सूर' बहुरि नहिं आवै ॥११०७॥

पाठ के लिये सहायक प्रतियाँ और उनका संकेत.

सारावली की चारों प्रतियों का संकेत पाठांतर के लिये इस प्रकार किया गया है—

प्रतियाँ	काल	संकेत
१. गुजराती सारावली		
दयाराम कृत गुजराती अनुवाद	सं० १८८० वि० में निर्मित	(गु)
२. संगीत रागकल्पद्रुम		
कृष्णानंद व्यास 'रागसागर' कृत	सं० १८६८ वि० में मुद्रित	(रा)
३. सूरसागर		
नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ	सं० १६२० वि० में मुद्रित [द्वितीय संस्करण सं० १९३१]	(न)
४. सूरसागर		
वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई	सं० १९५३ वि० में मुद्रित	(वं)

सूचना—इस पुस्तक का पाठ गुजराती अनुवादानुमोदित 'संगीत राग-कल्पद्रुम' के अनुसार है। इसमें अक्षर संबंधी साधारण अशुद्धियाँ ही शुद्ध की गई हैं। पाठांतर के लिए अन्य प्रतियों का उपयोग किया गया है। पुस्तक में जो शीर्षक और उपशीर्षक छपे है, वे विषय को स्पष्ट करने के लिये हमने स्वयं लगाये हैं।





तुलसी

जन्म सं० १५५४ देहावसान सं० १६८०

सारावली*



वंदौ श्री हरि-पद सुखदाई ।
जाकी कृपा (तें) पंगु गिरि लंघै, अँधरे कूँ[1] सब कछु दरसाई ।।
बहिरौ सुनैं, गुंग[2] पुन[3] बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ।
'सूरदास' प्रभु की सरनागत, बारंबार नमो तेहि[4] पाई×।।

राग़िनी काफी, ताल जति

खेलत यहि विधि हरि होरी, हो होरी, हो वेद विदित यह बात । टेक।

होली-खेल के रूप में ब्रह्म का नित्य विहार--

अविगत,[5] आदि, अनंत, अनूपम, अलख, पुरुष अविनासी ।
पूरण ब्रह्म, प्रगट पुरुषोत्तम, नित निज लोक विलासी ।। १ ।।
जहाँ[6] वृंदाबन आदि अजर, जहाँ कुंज-लता विस्तार ।
तहाँ[7] बिहरत प्रिया-प्रीतम दोऊ, निगम भृंग गुंजार ।। २ ।।
रतन जटित कालिंदी कौ[8] तट, अति पुनीत जहाँ नीर ।
सारस-हंस-चकोर-मोर खग कूजत कोकिल-कीर ।। ३ ।।
जहाँ गोवर्धन परबत मनिमै, सघन कंदरा सार ।
गोपिन मंडल मध्य बिराजत,[9] निसि-दिन[10] करत विहार ।। ४ ।।

---

* मुद्रित प्रतियों के प्रारंभ में 'सारावली' का परिचय इस प्रकार प्राप्त है—

अथ श्रीसूरदास जी कृत 'सूरसागर सारावली' तथा सवा लाख पदों का सूचीपत्र.

× यह पद कुछ परिवर्तित रूप में सूरसागर के प्रारंभ मे भी मिलता है—

चरन कमल बंदौं हरि-राई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधे कौं सब कछु दरसाई ।।
बहिरौ सुनै गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ।
'सूरदास' स्वामी करुनामय, बार-बार बंदौं तिहिं पाई ।।

१ को (न) (बं), २ गूंग (न) (बं), ३ पुनि (न), ४ ते (न) (बं), ५ अविगति (गु) (न), ६ जहं (न) (बं), ७ तहं (न) (बं), ८ के (न) (बं), ९ राजत (रा), १० वासर (रा)

सृष्टि-विस्तार—

खेलत-खेलत चित में आई, सृष्टि करन विस्तार।
अपने आप करि प्रगट कियौ है, हरी पुरुष अवतार॥
माया कियौ छोभ बहु विधि कर, काल-पुरुष के अंग।
राजस-तामस-सात्विक त्रिगुन, प्रकृति-पुरुष कौ संग॥
कीन्हें तत्व प्रगट तेही छिन, सबै अष्ट अरु बीस।
तिनके नाम कहत 'कवि सूरज', निर्गुण सब के ईस॥
प्रथिवी, अप, तेज, वायु, नभ संज्ञा, सब्द, परस अरु गंध।
रस और रूप और मन-बुधि-चित, अहंकार मति अंध॥
पान,[1] अपान, व्यान, उद्दान और कहियत प्रान समान।
तछक, धनंजय पुन देवदत्त और पौंड्रक संख द्यु मान[2]॥
राजस-तामस-सात्विक तीनों, जीव-ब्रह्म सुख-धाम।
अट्ठाईस तत्व यह कहियत, सो 'कवि सूरज' नाम॥

ब्रह्मा की उत्पत्ति

नाभि कमल नारायण की, सो वेद गरभ अवतार।
नाभि कमल में बहुतहिं भटक्यौ, तऊ न पायौ पार॥
तब आज्ञा भई यह हरि की, नभ करो परम तप आप।
तब ब्रह्मा तप कियौ वर्ष सत, दूर भये सब पाप॥
तब दरसन दीनौं करुनाकर, परम धाम निज लोक।
ताकौ दरसन देखि, भयौ अज सब बातन निःसोक॥
जहाँ आदि निज लोक महा निधि, रमा सहस संजूत।
आडोलन झूलत करुनानिधि, रमा सुखद अति पूत॥
अस्तुति करी विविध नाना करि, परम पुरुष आनंद।
जै-जै-जै श्रुति गीत गायकै, पढ़तहिं नाना छंद॥
आज्ञा करी नाथ चतुरानन, करौ सृष्टि—विस्तार।
होरी खेलन की विधि नीकी, रचना रचौ अपार॥

ब्रह्मा द्वारा सृष्टि-रचना

चौदह लोक करे नाना विधि, रचि बैकुंठ-पताल।
नाना रचना रची विधाता, होरी खेल रसाल॥

---

१ प्रान (गु) २ पौंडक संखपुर मान (रा)

दसहीं पुत्र भये ब्रह्मा के, जिन संच्यौ संसार ।
स्वायंभू मनु प्रगट तब कीन्हे, अरु सतरूपा नार ॥ १८ ॥
भुव की रक्षा करन जु कारन, धरि बराह अवतार ।
पाछैं कपिल रूपहरि धारचौ, कीनौं सांख्य-विचार ॥ १९ ॥
दीनौं ज्ञान आप माता कौ, कीनौं भव-विस्तार ।
आठौं लोकपाल तब कीये, अपने-अपने अधिकार ॥ २० ॥
तेज, अगनि, जल, मरुत, वरुन और सूरज, चंद ये नाम ।
मृत्यु, कुवेर जक्षपति कहियत, जहाँ संकर कौ धाम ॥ २१ ॥
सत्यलोक, जनलोक, लोक तप[1] और महर निज लोक ।
जहाँ[2] राजत ध्रुवराज महानिधि, निसि-दिन रहत असोक ॥२२॥
जननी-आज्ञा पाय चले बन, पंच बरस सुकुमार ।
ताकूँ[3] आप कृपा हरि कीनीं, धरि आये अवतार ॥ २३ ॥
पाछै पृथु कौ रूप हरि लीन्हौं, नाना रस दुहि काढ़े ।
ता पर रचना रची विधाता, बहु विधि जतनन बाढ़े ॥ २४ ॥
रचि नौ खंड दीप सातौं मिलि, कीनौं होरि-समाज ।
बन-उपबन-परबत बहु फूले, सबै बसंत कौ साज ॥ २५ ॥

ी-खेल के रूप में देवासुर-संग्राम—

दानव-देव लड़े आपुस में, कीनों युद्ध प्रकार ।
विविध सस्त्र छूटत पिचकारी, चलत रुधिर की धार ॥ २६ ॥
दीने मार असुर हरि नें, तब देवन दीनौं राज ।
एकन कौं फगुवा इंद्रासन, एक पताल कौ साज ॥ २७ ॥
विद्याधर-गंधर्ब-अप्छरा गान करत सब ठाढ़े ।
चारन-सिद्ध पढ़त विरदावलि, लै फगुवा सुख बाढ़े ॥ २८ ॥
चद्रलोक दीनौं ससि कौं तब, फगुवा मैं हरि आप ।
सब नछत्र कौं राजा कीन्हौं, ससि मंडल मैं छाप ॥ २९ ॥
मंगल, बुद्ध, शुक्र और शनि, और राहु-केतु ग्रह जानि ।
रवि और ससि सबहिंन कौं, फगुवा दीनौं चतुर सुजान ॥ ३० ॥

---

१ तपलोक (ग)(बं) २ जहँ (न)(बं) ३ ताको (न)(बं)

अतल, बितल और सुतल, तलातल, और महातल जान।
पाताल और रसातल मिलिकै[1] सातौं भुवन प्रमान ॥
संकरषन कौ धाम परम रुचि, तहाँ राजत निज बीर।
सेसनाग ताके तर कूरम, बसत महाधन धीर ॥
इलावर्त और किम्पुरुषा, कुरु और हरिवर्ष केतुमाल।
हिरनमै, रमयक, भद्रासन, भरतखंड सुखपाल ॥
सातौ दीप कहे शुक मुनि नै, सोई कहत अब 'सूर'।
जंबु, प्लच्छ, क्रौंच, साक, सालमलि,[2] कुस, पुसकर भरपूर
अपनें-अपनें स्थानन पर, तब फगुवा दियौ चुकाय।
जब-जब हरि-माया तें, दानव प्रगट भये हैं आय ॥
तब-तब धरि अवतार कृष्ण नें, कीनौ असुर-संहार।
सो चौबीस रूप निज कहियत, बरनन करत बिचार ॥

चौबीस अवतार--

प्रथम किये स्वायंभू मनु नृप, अज आज्ञा यह दीनी।
भू पर जाय राज तुम करि हौ, सृष्टि विस्तार यह कीनी ॥
स्वायंभू मनु और सतरूपा, तुरत भूमि पर आये।
जल मैं मगन भये भुव देखे, फिर अज पै फिर[3] आये ॥
अज सौं[4] आय कही सबही बिधि, भुव द्रव देखियत नाही।
तब अति ध्यान कियौ श्रीपति कौ, केसौ भये सहाई ॥

१. बाराह अवतार

आई छींक नाक ते प्रगटे, सूकर अति लघु रूप।
देखत गज से होय गये हैं, कीन्हौं वृहत स्वरूप ॥
जै-जै करत सकल सुर-नर-मुनि, जल मैं कियौ प्रवेस।
जाय पताल बाट गहि लीन्हीं धरनी रमा-नरेस ॥
ते भुव कमल-कुसुम की नाईं, चले मनहु[5] गजराज।
कछु डर नाहिन जिय में डरपत, अति आनंद समाज ॥

---

१ मिलि (रा) (न), २ साय कह (रा) (न), ३ चलि जासों (न)(बं), ५ बनहु (न)

२. सनकादि अवतार

जोगि-साधु सनकादिक चारौं, गये हरि के निज लोक ।
कीन्हे क्रोध, मनैं जब कीन्हे, दियौ साप अनि सोक ॥ ४३ ॥
जै अरु बिजै असुर जोनिन कूँ,[1] भये तीन अवतार ।
तिनमैं प्रथम लियौ कश्यप गृह, दिति के कूख मँझार ॥ ४४ ॥
प्रथम भयौ हिरनाक्ष महाबल, जिन जीते लोकपाल ।
नारद सीख गयौ सूकर पै, देखौ रूप विकराल ॥ ४५ ॥
सहस्त्र बरष लौं जल मैं जूझे, कियौ दनुज-संहार ।
पाछैं आय भूमि कौं[2] थापी, कियौ जज्ञ–विस्तार ॥ ४६ ॥

३. यज्ञ पुरुष अवतार

स्वायंभू-सतरूपा तनया, कहियत तीन प्रमान ।
आकूती, देवहुती और परसूती चतुर सुजान ॥ ४७ ॥
परसूती दई दक्ष . प्रजापति, तिनकी सती सयान ।
सो दीनीं महादेव देव कूँ, अति आनंद सुज्ञान ॥ ४८ ॥
तज्यौ देह अभियान पाय कैं, बहुरि दक्ष-गृह जाई ।
पातिव्रतहिं धर्म जब जान्यौ, बहुरौ रुद्र बिहाई ॥ ४९ ॥
आकूती दई रुचि प्रजापति, भये जज्ञ अवतार ।
इंद्रासन बैठे सुख बिलसत, दूर किये भुव-भार ॥ ५० ॥

४. कपिल अवतार

देवहुती करदम कूँ दीनीं, तिन कीन्हौं तप भारी ।
बिंदुसरोवर आये माधौ, कियैं गरुड़ असवारी ॥ ५१ ॥
दियौ वरदान सृष्टि करिवे कूँ, अस्तुति करी प्रमान ।
मेरे अस अवतार होयगौ, कहि भये अंतरध्यान ॥ ५२ ॥
पाछैं रिषि निज तप मन लायौ, कीनौ प्रगट बिमान ।
तामैं बैठ सकल जग देख्यौ, कन्या नै सुखदान ॥ ५३ ॥
पाछैं कपिल रूप हरि प्रगटे, दरसन करि मुनिराय ।
कीनौं त्याग, गये बन कूँ तब, ब्रह्म परम पद पाय ॥ ५४ ॥

---

१ कौं (न) (बं), २ भीर (रा)

]

पाछैं विविध ज्ञान जननी कूँ, दीनौं कपिल दृढ़ाय।
सांख्य जोग और ज्ञान-भक्ति दृढ़, बरनी विविध बनाय
जल कौ रूप तुरत ह्वै गई वह, हरि के रूप समाय।
चले मगन ह्वै ब्रह्म-ध्यान करि, गंगासागर न्हाय।
अजहूँ लौं राजत नीरध[1]-तट, करत सांख्य-विस्तार।
सांख्यायन से बहुत महामुनि, सेवत चरन सुचार।

५. दत्तात्रेय अवतार

अत्रै पुत्र भये ब्रह्मा के, तिन कीन्हौं तप जाय।
आये तीन देव ताके ढिग, ब्रह्मा-सिव-हरिराय।
तब उन माँग्यौ सुत तुमही से, तीनौं प्रगटे आय।
अज ससि अंस, रुद्र दुरवासा, दत्तात्रै हरिराय।
अनसूया के गर्भ प्रगट ह्वै, कियौ जोग आराधि।
जम और नैम, प्रमान-प्रत्याहार, धारन-ध्यान-समाधि।
आसन के सब सिद्ध जोग कर, प्रगट कला जगदीस।
दीनौ भोग सहस नृप कूँ बहु, करुनानिधि जगदीस[2]।
कीने गुरु चौबीस, सीख लै, यदु कौं दीनौं ज्ञान।
पातंजल से मुनि पद सेवत, करत सदा अज ध्यान।

६. नर-नारायण अवतार

जब सृष्टिन पर किरपा कीनी, ज्ञान कला विस्तार।
सनक, सनंदन और सनातन, चारयौ सनतकुमार।
उनसौं कह्यौ सृष्टि नाना विधि, रचना करौ बनाय।
उन नहिं मान्यौं, तब चतुरानन खीझे क्रोध उपाय।
संकर प्रगट भए भृकुटी तें, करी सृष्टि निर्मान।
भूत-प्रेत-बैताल रचे[3] बहु, दौरे बिधि कौं खान।
पूरन करौ, कह्यौ चतुरानन, सृष्टि महा दुख दैन।
तब संकर तपस्या कूँ निकसे, चिते कमल-दल नैन।

---

१ नीध कै (रा), २ बीस (रा), ३ रचौ (बं)

मूरति त्रिया जु भई धरम की, तिनके हरि अवतार।
नर-नारायन[1] भये प्रगट बपु, तिन मेट्यौ भुव-भार॥ ६७॥
सहस कवच इक[2] असुर सँहारेउ, बहुरि कियौ तप भारी।
सोच पर्यौ[3] सुरपति कौं, तब उन पठई अप्छरा नारी॥ ६८॥
बहुत भाँति उन कियौ परम छल, तप मैं उनके काज।
कछु नहिं चली ब्रह्म नारायन, सुख समाज अति[4] साज॥ ६९॥
इक उरबसी हिरदै उपजाई, दई सक्र कौं ताय।
ताकूँ देखि-देखि जीवत है, अजहुँ इंद्र सुख पाय॥ ७०॥

७. हरि अवतार (ध्रुव की कथा)

स्वायंभु के दुतिय पुत्र, उत्तानपाद मति-धीर।
तिनके ध्रुव बालक जो जाये, और उत्तम गंभीर॥ ७१॥
नृप के पास गये, गोदी में बैठन कौं सुकुमार।
तब लघु मात कह्यौ, तब बैठौ जब मेरे अवतार॥ ७२॥
सुनि कटु बचन गये माता पै, तब उन ज्ञान दृढ़ायौ।
हरि की भक्ति करौ सुत[5] नीकैं, जौ चाहौ सुख पायौ॥ ७३॥
पाँच बरस के निकस चले तब, मधुबन पहुँचे आय।
बिच नारद मुनि तत्व बतायौ, जपैं मंत्र चित लाय॥ ७४॥
कछु दिन पत्र भक्ष करि बीते, कछु दिन लीनौं पानी।
कछु दिन पवन कियौ अनुप्रासन, रोक्यौ स्वाँस यह जानी॥७५॥
दारुन तप जब कियौ राजसुत,[6] तब कांप्यौ सुरलोक।
त्राहि-त्राहि हरि सौं सब भाख्यौ, दूर करौ सब सोक॥ ७६॥
तब हरि कह्यौ कोऊ जिन डरपौ, अबहिं तुरत मैं जैहौं।
बालक ध्रुव बन करत गहन तप, ताहि तुरत फल देहौं॥ ७७॥
इतनी कहत गरुड़ पर चढ़िकै, तुरतहिं मधुबन आये।
कबु कपोल परस बालक के, बानी प्रगट कराये॥ ७८॥

---

१ 'राग कल्पद्रुम' के अतिरिक्त किसी अन्य प्रति में 'नारायण' से पूर्व 'नर' नहीं है। २ एक (न), ३ परेव (न) परेउ (वं), ४ हिय (न), ५ सुख (न) (वं), ६ नृप सुत (रा)

अस्तुति करी बहुत ध्रुव सब विधि, मुनि प्रसन्न भये आप ।
दीनौं राज भूमि[1]-मंडल कौ, सब विधि थिर करि थाप ।। ७९ ।।
हरि बैकुंठ सिधारे, पुनि ध्रुव आये अपने धाम ।
कीनौं राज तीस-षट बरसनि, कीन्हे भक्तन-काम ।। ८० ।।
जक्ष प्रबल बाढ़े भुव-मंडल, जिन मारयौ निज भ्रात ।
तिनके काज अंस हरि प्रगटे, ध्रुव जगत विख्यात ।। ८१ ।।
बहुत बरष लौं राज कियौ भुव, फिर आये निज लोक ।
सब के ऊपर सदा बिराजत, ध्रुव सदा निःसोक ।। ८२ ।।

८. हंस अवतार

सनकादिक पूछयौ चतुरानन, ब्रह्म-जीव कौ बीच ।
प्रगट हंस बपु धरयौ जगत-गुरु[2], जोपै नीर सुमीच ।। ८३ ।।

९. पृथु अवतार

यह भुव मंडल कौ रस काढ़यौ, भाँति-भाँति निज हाथ ।
धरि पृथु रूप कियौ जग आनँद, अखिल लोक के नाथ ।। ८४ ।।

१०. ऋषभ देव अवतार

प्रियव्रत बंस धरयौ[3] हरि निज बपु, रिषभ देव यह नाम ।
कीन्हे काज सकल भक्तन के, अंग-अंग अभिराम ।। ८५ ।।
कीनौं गरब महा मघवा नें, बरसा बरषौ नाँह ।
तब हरि आपु मेघ ह्वै बरषें, करी परम सुख छाँह ।। ८६ ।।
ज्ञान उपदेस कियौ पुत्रन कूँ, ब्रह्मावर्त मंझार ।
पाछै करि संन्यास जगत मैं, बिचरे परम उदार ।। ८७ ।।
आठौं सिद्धि भईं सनमुख जब, करी न अंगीकार ।
जै-जै-जै श्री ऋषभ देव मुनि, परब्रह्म अवतार ।। ८८ ।।

११. हयग्रीव अवतार

ब्रह्म सभा मैं कियौ जज्ञ जब, करन वेद उच्चार ।
प्रगट भये हयग्रीव महानिधि, परब्रह्म अवतार ।। ८९ ।।

---

१ भू [रा] [न], २ पुर [बं]. ३ धरेव [न] धरेउ [बं]

चार वेद लैगौ संखासुर, जल में रह्यौ छिपाय ।
धरि हयग्रीव रूप हरि मारयौ, लीने वेद छुडाय ॥ ९० ॥

१२. मत्स्य अवतार

सत्यव्रत राजा रविबंसी,[1] पहिलें[2] भये मनु बंस ।
कीनौं तप बहु भाँति परम रुचि, प्रगट भये हरि-अंस ॥ ९१ ॥
धरि लघु रूप मीन कौ मोहन, आए उनके पानि ।
तब उन जल में डारि दियौ फिर, तब बोले हरि बानि ॥ ९२ ॥
जल के बीच डारि जिन मोकूं,[3] बड़े मच्छ डर लाग ।
यह कहि ब्रहद[4] रूप हरि धारयौ,[5] सत्यव्रत के भाग ॥ ९३ ॥
सातैं दिवस होयगी परलै, आवैगी एक नाव ।
तामैं बैठि सतद्विज अरु तुम, करो भजन मम भाव ॥ ९४ ॥
इतनौ कहि हरि नृप देखत ही, भये जु अंतरध्यान ।
सातैं दिवस भयौ जब परलै, तब कीन्हौं नृप ज्ञान ॥ ९५ ॥
सबहिं अन्न कौ बीज लियौ नृप, और लीने द्विज साथ ।
बैठे नाव ध्यान हरि कौ करि, दरसन दीनौ नाथ ॥ ९६ ॥
बासुक नाग आय तहाँ ततछिन,[6] बाँधी दृढ़ करि नाव ।
पूछ्यौ ज्ञान कह्यौ सो सब हरि, तत्व विधान बनाव ॥ ९७ ॥
बहुत काल लौ बिचरे जल मैं, तब हरि भये सु साँति ।
बीत्यौ[7] प्रलै,[8] विविध नाना कर सृष्टि रची बहु भाँति ॥ ९८ ॥
यह हरि मच्छ रूप जब लीन्हौं, करयौ[9] चरित्र विस्तार ।
जै-जै-जै श्री मीन महाबपु, जै-जै जगत-अधार ॥ ९९ ॥ ॥

१३. कूर्म अवतार

सुर अरु असुर मथन कीनौ निधि, चौदह रतन निकार ।
परबत पीठ धरयौ हरि नीकै, लियौ कुरम[10] अवतार ॥ १०० ॥

---

१ रघुवंशी (न), २ प्रथम (न) (बं), ३ मोकों (न) (वं), ४ बृहत (न) (बं), ५ धारेव (न) धारेउ (बं), ६ ततछन (न) तत्क्षण (वं), ७ बीतै (वं), ८ प्रलय (न) (बं), ९ कियौ (न) (वं), १० कूम न ब

१४. नृसिंह अवतार (प्रहलाद की कथा)

हिरनकसिपु अति प्रबल दनुज ह्वै, कीनौ तप परचंड ।
तब उन वर दीन्हौं चतुरानन, कीन्हौं अमर अखंड ।।१०१।।
जप तप गयौ तबहिं मघवा नें, सब संपति गहि लीन्हीं ।
गहिकैं कच कामिन राजा की, तब नारद सिख दीन्हीं ।।१०२।।
याके गर्भ बसत हैं हरिजन, सुन सुरपति यह बात ।
तब तजि दई आप लै आये, निज आस्रम विख्यात ।।१०३।।
निय प्रति ज्ञान कथा हंसन सौं, कहत रहत मुनिराज ।
सुनि प्रहलाद प्रसन्न कूख मैं, अति आनंद समाज ।।१०४।।
ता पाछैं तप कियौ असुर बहु, फिर देख्यौ निज धाम ।
तब नारद मुनि दई कथा, ध्रू लै आयौ है ग्राम ।।१०५।।
पाछैं लोकपाल सब जीते, सुरपति दियौ उठाय ।
बरुन-कुबेर-अगनि-जम-मारुत, सुबस कियौ छिन माँय ।।१०६।।
हाहाकार भयौ सुरलोकन, गये सबै अज पास ।
तब अज ध्यान कियौ माधौ कौ, बानी भई अकास ।।१०७।।
सकल लोक यह देत असुर दुख, तऊ न करौं संहार ।
जब मेरे जन कूँ दुख दइहै, छिन मैं डारौं मार ।।१०८।।
जब प्रहलाद प्रगट याके गृह, पांच वर्ष के भये है[1] ।
आदर बहु कीन्हौं राजा नें, पढ़न विप्र-गृह गये हैं[2] ।।१०९।।
जब वह विप्र पढ़ावै कछु-कछु, सुन वे चित्त धरि राखें ।
जब वह जाय तबहिं सबहिन सौं, राम-राम मुख भाखैं ।।११०।।
लरिका और पढ़त साला मै, तिनकूँ करत उपदेस ।
हरि कौ भजन करौ सबही मिलि, और जगत सुख लेस ।।१११।।
इहिं बिधि कर उपदेस सबन कूँ, किये भजन रसलीन ।
संडामरका पूछन लाग्यौ, तब यह उत्तर दीन ।।११२।।
राम-कृष्ण अवतार मनोहर, भक्तन के हित काज ।
सोई सार जगत में कहियत, सुनौ देव द्विजराज ।।११३।।

१ भैहैं (बं), २ गैहैं (बं)

यही बात जगत मैं नीकी, सोई पढ़त हम आज।
तबहीं विप्र कह्यौ जो असुर सौं, पुत्र पढ़त बिन काज ॥११४॥
तबही असुर प्रहलाद बुलाये, लिये गोद भरि अंक।
कह्यौ पुत्र तुम कहा पढ़ौ हौ, पूछत कह्यौ निसंक ॥११५॥
स्रवन-कीरतन-स्मरन-पादरत, अरचन-बंदन-दास।
सख्य और आत्मानैवेदन, प्रेम-लच्छना जास ॥११६॥
सुनौ पिता हौं यही पढ्यौ हूँ, और बात नहिं जानूं।
इनते और मोहिं जो कहियत, सो कबहूँ नहिं मानूं ॥११७॥
दीनौ पटकि भूप धरनी पै, कह्यौ विप्र सौं खीझ।
रे मूरख ! तू कहा पढ़ायौ, कैसै देऊं तोहैं रीझ ॥११८॥
जो यह मेरौ बैरी कहियत, ताकौ नाम पढ़ायौ।
देहु गिराय याहि परवत तें, छिन गत-जीव करायौ ॥११९॥
दीनौं डार सैल तें भू पर, पुनि जल भीतर डारचौ।
डार अग्नि में सस्त्रन मारौ, नाना भाँति प्रहारौ ॥१२०॥
तऊ न घात भई अंगन की, जहाँ-तहाँ राम बचायौ।
तब नृप आय शस्त्र कर गहिकैं, बहुतहिं त्रास दिखायौ ॥१२१॥
कहाँ है राम-कृष्ण वह तेरौ, यौं कहि गरजन कीनीं।
घट-घट, जल-थल, व्योम-धरनि मैं, व्यापक यह धुनि लीनीं॥१२२॥
तब लै खड्ग खंभ मैं मारौ, भयौ सब्द अति भारी।
प्रगट भये नरहरि वपु धरि हरि, करकट करि उच्चारी ॥१२३॥
पकर लियौ छिन माँझ असुर, बल डारौ नखन बिदारी।
रुधिर पान करि, आंत-माल धरि, जै-जै सब्द उचारी ॥१२४॥
मारौ दैत दुष्ट एक छिन मैं, जै नृसिंह बपु धारे।
पुहुँपन वृष्टि करत सुर-नर-मुनि, भये भक्त रखवारे ॥१२५॥
रमा निकट नहि आवत हरि के, ऐसौ बपु हरि धारौ।
अज-सनकादि देव, नारद मुनि, जात न रूप निहारौ ॥१२६॥
अपनी-अपनी अस्तुति करिकै, सबहिन यहै सुनायौ।
गधर्व-विद्याधर-चारन, विमल-विमल जस गायौ ॥१२७॥

तब प्रहलाद आय, हरि पद सौं सीस नाय, यह भाख्यौ ।
जै-जै-जै जगदीस परमगुरु, मोर अधम पन[1] राख्यौ ॥१२८॥
तुमहीं आदि-अखंड-अनूपम, असरन-सरन-मुरार ।
देव-देव, परब्रह्म-परिपूरन, भक्त हेत अवतार ॥१२९॥
जहाँ-जहाँ भीर परत भक्तन कौं, तहाँ-तहाँ होत सहाय ।
अस्तुति करि मन हर्ष बढ़ायौ, लेहन जीभ कराय ॥१३०॥
तब बोले नरसिंह कृपा करि, सुनौं भक्त मम बात ।
मन्वंतर कौ राज दियौ तुम, धरौं सीस पर हाथ ॥१३१॥
निर्गुन-सगुन होय मैं देख्यौ, तोसौ भक्त न पाऊँ ।
जहाँ-जहाँ भीर परत भक्तन कौं, तहाँ प्रगट होय आऊँ ॥१३२॥
सुन प्रहलाद प्रतिज्ञा मेरी, तोकूँ कबहुँ न त्यागूँ ।
जैसै धेनु बच्छ कूँ चाटत, तैसैं मैं अनुरागूँ ॥१३३॥
जो माँगौ सो देहुँ तुरत ही, नहिं विलंब कछु लाग ।
तब प्रहलाद यही वर माँग्यौ, चरन-कमल अनुराग ॥१३४॥
किरपा करि दीन्हौं करुनानिधि, अटल भक्ति, थिर राज ।
अंतरध्यान भये हरि तहाँ तें, सुफल भये सब काज ॥१३५॥

१५. नारद अवतार

नारद रूप जगत उद्धारन, बिचरत लोकन माय ।
कर उपदेस ज्ञान हरि भक्तहिं, और वैराग्य दृढ़ाय ॥१३६॥

१६. मनु अवतार

स्वायंभू और सतरूपा दोउ, कहियत हैं अवतार ।
जग के[2] धर्म प्रचार किये भुव, भक्त कर्म आचार ॥१३७॥

१७. धन्वन्तरि अवतार

करुनाकर जलनिधि तें प्रगटे, सुधा-कलस लै हाथ ।
आयुरवेद विस्तारन कारन, सब ब्रह्मांड के नाथ ॥१३८॥

१८. परशुराम अवतार

छत्री दुष्ट बढ़े जो भुव पर, लियौ कृष्ण अवतार ।
परसुराम ह्वै कै द्विज थापे, दूर कियौ भू-भार ॥१३९॥

---

१ प्रण (न) (बं), २ को (न) (बं)

१६. राम अवतार

रघुकुल बंस चतुर-चूड़ामनि, पुरषोत्तम अवतार ।
दसरथ के गृह जन्म लियौ हरि, रूप-रास[1] सुकुमार ॥१४०॥
रावन-कुंभकरन असुराधिप, बढ़े सकल जग माँह ।
सबहीं लोकपाल उन जीते, कोऊ बचयौ नाँह ॥१४१॥
सकल देव मिलि जाय पुकारे, चतुरानन के पास ।
लै सिव संग चले चतुरानन, छीर-सिंधु सुख वास ॥१४२॥
अस्तुति करि बहु भाँति जगाये, तब जागे निज नाथ ।
आज्ञा दई जाय कपि-कुल मैं, प्रगटो सब सुर साथ ॥२४३॥
तब ब्रह्मा सबहिंन सौं भाष्यौ, सोई सब सुर कीन्हौं ।
सातों दीप जाय कपि-कुल मैं, आय जन्म सुर लीन्हौं ॥१४१॥
अपने अंस आप हरि प्रगटे, पुरुषोत्तम निज रूप ।
नारायन भुव भार हरयौ है, अति आनद स्वरूप ॥१४५॥
बासुदेव, यौं कहत बेद मैं, हैं पूरन अवतार ।
सेस सहस मुख रटत निरंतर, तऊ न पावत पार ॥१४६॥
सहस वर्ष लौं ध्यान कियौ सिव, राम-चरित्र सुख-सार ।
अवगाहन करिकै सब देख्यौ, तऊ न पायौ पार ॥१४७॥
बिनी समाधि, सती तब पूछयौ, कहौ मरम गुर-ईस ।
काकौ ध्यान करत उर अंतर, को पूरन जगदीस ॥१४८॥
तब सिव कह्यौ राम अरु गोबिंद, परम इष्ट एक मेरे ।
सहस वर्ष लौं ध्यान करत हौं, राम-कृष्ण सुख केरे ॥१४९॥
तामैं राम समाधि करी अब, सहस वर्ष लौं बाम ।
अति आनंद मगन मेरौ मन, अँग-अँग पूरन काम ॥१५०॥
कृपा[2] करि मोकूँ यह कहियै, अमर होहुँ जेहिं भाँत ।
मोहि नारद मुनि तत्व बतायौ, तातें जिय अकुलात ॥१५१॥
तव महादेव कृपा करिकै, यह चरित्र कियौ विस्तार ।
सो ब्रह्मांड पुरान व्यास मुनि, कियौ बदन उच्चार ॥१५२॥

---

१ राम (न) (बं), २ दाया (न) (बं)

मुनि बालमीक-कृपा सातौं ऋषि, राम-मंत्र फल पायौ ।
उलटौ नाम जपत अघ बोते, पुन उपदेस करायौ ॥१५३॥
रामचरित बरनन के कारन, बालमीक अवतार ।
तीनौं लोक भये परिपूरन, रामचरित्र सुखसार ॥१५४॥
सतकोटी रामायन कीनीं,[1] तऊ न लीनौं पार।
कह्यौ वसिष्ठ मुनि रामचंद्र सौं, रामायन उच्चार ॥१५५॥
कागभुसुंड गरुड़ सूं[2] भाष्यौ, रामचरित्र अवतार ।
सकल वेद अरु सास्त्र कह्यौ है, रामचंद्र जस-सार ॥१५६॥
कछु संक्षेप 'सूर' अब बरनत, लघुमति दुरबल बाल ।
यह रसना पावन के कारन, मेंटन भव-जंजाल ॥१५७॥

राम-चरित्र---

तीनौं व्यूह संग लै प्रगटे,[3] पुरुषोत्तम श्री राम ।
सकरषन-प्रद्युम्न लक्ष्मण-श्री भरत महा सुख धाम ॥१५८॥
शत्रुघन अनुरुध कहियतु हैं, चतुरव्यूह निज रूप ।
रामचंद्र प्रगटे जब गृह मैं, हरषे कौसल-भूप ॥१५९॥
पुष्य नक्षत्र, नौमी जु जन्म दिन, लगन सुद्ध[4], सुभ बार ।
प्रगट भये दसरथ-गृह, पूरन चतुरव्यूह अवतार ॥१६०॥
अति फूले दसरथ मन हीं मन, कौसल्या सुख पायौ ।
सुमित्रा, केकई मन आनँद, यह सबहिंन सुत जायौ ॥१६१॥
गुरु वसिष्ठ, नारद मुनि ज्ञानी, जन्म-पत्रिका कीनीं ।
रामचंद्र विख्यात नाम यह, सुर-मुनि की सुधि लीनीं ॥१६२॥
देत दान नृपराज द्विजन कों, सुरभी-हेम अपार ।
सब सुंदरि मिलि मंगल गावत, कंचन-कलस दुआर ॥१६३॥
आये देव और मुनिजन सब, दैं असीस सुख भारी ।
अपने-अपने धाम चले सब, परम मोद रुचिकारी ॥१६४॥
मन वांछित फल सबहिंन पायौ,[5] भयौ सबन आनंद ।
बाल रूप ह्वै कै दसरथ-सुत, करत केलि स्वच्छंद[6] ॥१६५॥

---

१ कीनों (बं), २ सों (न)(बं), ३ प्रगट्यौ (रा), ४ बुद्ध (रा)
[...]ाये (बं), ६ सुख छंद (रा)

बाल-चरित्र

घुटुरन चलत कनक-आँगन मैं, कौसल्या छबि देखत ।
नील नलिन तन पीत झगुलिया, घन-दामिन दुत देखत ॥१६६॥
कबहुँक माखन-रोटी लैकै, खेल करत पुन माँगतु ।
मुख चुंबत, जननी समुझावत, आय कंठ पुन लागतु ॥१६७॥
कागभुसुंड दरस कौं आये, पाँच वर्ष लौं देखे ।
अस्तुति करी, आपु बर पायौ, जनम सुफल करि लेखे ॥१६८॥
कृपा करी, निज धाम पठायौ, अपनौ रूप दिखाय ।
वाके आस्रम कोउ बसत है, माया लगत न ताय ॥१६९॥
प्रातकाल उठि जननि जगावत, उठौ मेरे बारे राम !
उठि बैठे, दतुवन लै आई, करी मुखारी स्याम ॥१७०॥
च्यार[1] भ्रात मिल करत कलेऊ, मधु-मेवा-पकवान ।
जल-आचमन, आरती करिकै, फिर कीन्हौं असनान ॥१७१॥
करत शृंगार च्यार भइया मिल, सोभा बरनि न जाई ।
चित्र-विचित्र सीस[2] चौतनिया, इंद्रधनुष छबि छाई ॥१७२॥
अलकावलि-मुक्तावलि गूँथी, डोर सुरंग बिराजे ।
मनौं सुरसरी धार सरस्वती, जमुना मध्य बिराजै ॥१७३॥
तिलक भाल पर परम मनोहर, गो-रोचन कौ दीनौं ।
मानौं तीन लोक की सोभा, अधिक उदै सो कीनौ ॥१७४॥
खजन नैन बीच नासा-पुट, राजत यह अनुहार ।
खजन युग मनौं लरत लराई, कीर बुझावत रार ॥१७५॥
नासा के बेसर मैं मोती, बरन बिराजत चार ।
मनौं जीव-सनि-सुक्र एक ह्वै, ठाढ़े रवि के द्वार ॥१७६॥
कुंडल ललित कपोल बिराजत, झलकत आभा गंड ।
इंदीबर पर मनौं देखियत, रबि की किरन प्रचंड ॥१७७॥
अरुन अधर दमकत दसनावलि, चारु चिबुक मुसक्यान ।
अति अनुराग सुधाकर सींचत, दाड़िम बीज समान ॥१७८॥

---

१ चारौ (न) (बं). २ सुभग (बं)

कंठसिरी बिच पदक बिराजत, बहु मनि-मुक्ता हार ।
दहिनावर्त देत ध्रुव तारे, सकल नखत बहु बार[1] ॥१७९।
रतन जड़ित कंकन-बाजूबँद, नगन मुद्रिका सोहै ।
डार-डार मनु मदन बिटपतरु, देखि-देखि मन मोहै ॥१८०।
कटि किंकिनि रुनझुन सुनि तन की, हंस करत किलकारी ।
नूपुर धुनि पग लाल पन्हैयाँ, उपमा कौन बिचारी ॥१८१।
भूषन-बसन आदि सब रचि-रचि, माता लाड़ लड़ावै ।
रामचंद्र की देख माधुरी, दरपन देख दिखावै ॥१८२।
निज प्रतिबिंब बिलोक मुकर मैं, हँसत राम सुखरास ।
तैसेंइ लक्षमन-भरत-सत्रुहन, खेलत डोलत पास ॥१८३।
दसरथ राय न्हाय, भोजन कों बैठे अपने धाम ।
लावौ बेगि राम-लक्षमन कौं, सुनि आये सुखधाम ॥१८४।
बैठे संग बाबा के, चारौं भैया जैंवन लागे ।
दसरथ राय आपु जैंवत हैं, अति आनंद अनुरागे ॥१८५।
लघु-लघु कौर[2] राम मुख मेलत, आपु पिता मुख मेलत ।
बाल-केलि कौ बिसद परम सुख, सुख-समुद्र नृप झेलत ॥१७६
दार-भात-घृत, कढ़ी सलौनी, और नाना पकबान ।
आरोगत नृप चार पुत्र मिलि, अति आनंद-निधान ॥१८७।
अचवन करि, पुन जल अचवायौ, जब नृप बीरा लीनौं ।
राम-लखन और भरत-सत्रुघन, सबहिंन अचबन कीनौं ॥१८८।
बीरा खाय चले खेलन कौं, मिलिकै चारौं बीर ।
सखा संग सब मिले बराबर, आये सरजू-तीर ॥१८९।
तीर चलावत, सिष्य सिखावत, धर निसान देखरावत ।
कबहुँक सधे[3] अस्व चढ़ि आपुन, नाना भाँति नँचावत ॥१९०।
चबहुँक चार भ्रात मिलि अगिया, जाल परम सुख पावत ।
हरिन आदि बहु जंतु किये बध, निज सुरलोक पठावत ॥१९१।
यहि बिधि बन-उपबन बहु क्रीड़ा, करी राम सुखदाई ।
बालमीक मुनि कही कृपाकर, कछु एक 'सूर' जो गाई ॥१९२।

---

१ नक्षत्र   रा   २ ग्रास   न   व   ३ साधु   रा

भई साँझ जननी टेरत है, कहाँ गये चारों भाई।
भूख लगी ह्वै है लालन कौं, लावो बेगि बुलाई ॥१९३॥
इतने माँझ चार भैया मिलि, आये अपने धाम।
मुख चुंबत, आरती उतारत, कौसल्या अभिराम ॥१९४॥
सौमित्रा-कैकई सुख पावत, बहु बिधि लाड़ लड़ावत।
मधु–मेवा–पकवान–मिठाई, अपने हाथ जैंवावत ॥१९५॥
चारौं भ्रात स्रमित जननी नें जाने, तब पौढ़ाये[1]।
चांपत चरन जननि अप अपनो, कछुक मधुर सुर गाये ॥१९६॥
आई नींद, राम सुख पाये, दिन कौ स्रम बिसरायौ।
जागे भोर, दौरि जननी नें अपने कंठ लगायौ ॥१९७॥

बिश्वामित्र की यज्ञ-रक्षा

विश्वामित्र बड़े मुनि कहियत, जज्ञ करत निज धाम।
मारिच और सुबाहु महासुर, विघन करत दिन-जाम ॥१९८॥
परब्रह्म अवतार जानिकैं, आये नृप के पास।
दसरथ राय बहुत पूजा बिधि, किये प्रसन्न हुलास ॥१९९॥
भोजन कर जबहीं जु बिराजे, तब भाख्यौ मुनिराय।
जज्ञ सफल कीजै मेरौ, अब दीजै राम पठाय ॥२००॥
तब नृप कह्यौ राम हैं बालक, मोकौं आज्ञा कीजै।
तब द्विज कह्यौ राम परमेसर, बचन मान यह लीजै ॥२०१॥
गुरु बसिष्ठ सब बिधि समुझाए, राम-लखन सँग दीन्हे।
मारग मैं अहल्या उद्धारी, नावक निज पद छीने ॥२०२॥
विश्वामित्र सिखाई बहु बिधि, विद्या धनुष प्रकार।
पैड़े[2] मैं ताड़िका जु आई, धाई बदन पसार ॥२०३॥
छिन मैं राम तुरत सो मारो, नैंक न लागो बार।
दीन्हीं मुक्ति जानि निज महिमा, आए ऋषि के द्वार ॥२०४॥
कीन्हौं विप्र जज्ञ परिपूरन, असुर विघन कूँ आये।
अग्नि-बान कर दहन कियौ है, एक समुद्र पठाये ॥२०५॥

---

१ चारों भ्रातन श्रमित जानिके जननी तब पौढ़ाये (न) (बं).
२ मारग (न) (बं)

धनुष-भंग

जनक बिदेह कियौ जु स्वयंबर, बहु नृप-विप्र बुलाए।
तोरन धनुष देव त्र्यंबक कौ, काहू जतन न पाये ॥२०६।
बिस्वामित्र मुनि बेगि बुलाये, सकल सिष्य लै संग।
राम-लखन सँग लिए आपने, चले प्रेम-रस-रंग ॥२०७।
जहाँ-तहाँ उझकि झरोखा झाँकत, जनक नगर की नार।
चितवनि कृपा राम अवलोकत, दीन्हौं[1] सुख जो अपार ॥२०८।
कियौ सनमान बिदेह नृपति नें, उपबन बासौ[2] कीन्हौं।
देखन राम चले निज पुर कौं, सुख सबहिन कौं दीन्हौं ॥२०९।
सब पुर देखि, धनुष पुन[3] देख्यौ, देखे महल सुरंग।
अदभुत नगर बिदेह बिलोकत, सुख पायौ सब अंग ॥२१०।
कहत नारि सब जनक नगर की, बिधि सौं गोद पसार।
सीता जू कौं बर[4] यह चहियै, है जोरी सुकुमार ॥२११।
अपने धाम तब फिर आये दोऊ, जान भई कछु सांझ।
कर दंडवत, परस पद ऋषि के, बैठे उपबन माँझ ॥२१२।
संध्या भई, कृत्त नित कारिकै कीन्हीं ऋषि परनाम।
पौढ़े जाय, चरन-सेवा द्विज करकै अति बिसराम ॥२१३।
ब्रह्म महूरत भयौ सबेरौ, जागे दोऊ भाई।
कर परनाम देव-गुरु-द्विज कौं, जल-स्नान कराई ॥२१४।
आये भूप देस-देसन के, जुरी सभा अति भारी।
तहाँ बुलाये सकल द्विजन कौं, जनक सभा संझारी ॥२१५।
कौसिक मुनि तहाँ छबि सौं पधारे, लियैं सिष्य संग सात।
चले नित्य अन्हक सब कर द्विज, उर आनँद न समात ॥२१६।
दोनौं भ्रात संग मैं लीन्हे, आये राज-दुआर।
जहाँ बैठे सब भूप ओप सौं, बाढ़्यौ गरब अपार ॥२१७॥
अपने-अपने भुज-बल तोलत, तोरन धनुष त्रपुरार।
कछु नहिं चलत, खिसाने भये[5] सब, रहे बहुत पचिहार ॥२१८॥

---

१ जीनौं (रा), २ बासौ (बं), ३ पुर (बं), ४ दूलह (रा)
५ खिसाय गये (बं)

सीता कहत सहेलिन सौं पुनि, यही कहत रघुनंद।
तव उन कह्यौ सकल सुखसागर, सो ये परमानंद ॥२१६॥
बारंबार जिय सोच करत है, विधि सौं बचन उचारी।
मन-क्रम-बचन यहै बर दीजो, माँगत गोद पसारी ॥२२०॥
एक बार सुरदेबी पूजन, भयौ दरस सखि मोहिं।
ता दिन तैं छिन कल न परत है, सत्य कहत हौं तोहिं ॥२२१॥
सब नृप पचे, धनुष नहिं टूट्यौ, तब विदेह दुख पायौ।
क्रोध बचन करि सबसें बोले, क्षत्री कोउ न रह्यायौ ॥२२२॥
यह सुनि लछमन भये क्रोध अति[1], विषम बचन यौं बोले।
सूरज बंस नृपति भूतल पर, जाके बल बिन तोले ॥२२३॥
कितक बात यह धनुप रुद्र कौ, सकल विश्व कर लैहौं।
आज्ञा पाय देव रघुपति की, छनक माँझ हठ गैहौं ॥२२४॥
सबके मन कौ देख अंदेसौ, सीता आरत जानी।
रामचंद्र तब हीं अकुलाने, लीन्हौं सारंग पानी ॥२२५॥
छिन मैं कर लैकै जु चढ़ायौ, देखत हैं सब भूप।
डारयौ तोर, अघात-सब्द भयौ, जैसै काल कौ रूप ॥२२६॥
सब ही दिसा भई अति आतुर, परसुराम सुनि पायौ।
परसु सम्हार, सिष्य संग लैकै, छिन ही मैं तहाँ आयौ ॥२२७॥
जैजैकार भयौ जगती पर, जनकराज अति हरषे।
सुर बिमान सब कौतुक भूले, जै-धुनि सुमनन बरसे ॥२२८॥

राम-सीता विवाह

जनकराज तब विप्र पठाये, बेगि बरात बुलाई।
दसरथ राज बाजि-गज लैकै, सबही सौज तुराई ॥२२६॥
चली बरात बिपुल धन लैकै, जुरे मनुज नहिं पार।
सोभा-सिंधु कहत नहिं आवै, बरनन करत उचार ॥२३०॥
गुरु बसिष्ठ मुनि लगन दियौ सुभ, सुभ नछत्र, सुभ बार।
आए जान नृपति सनमाने, कीन्हौं अति मनुहार ॥२३१॥

---

१ युत (न) (वं)

ब्याह-केलि सुख बरनन कीन्हौं, मुनि बालमीक अपार ।
सो सुख 'सूर' कह्यौ, वह कीरत, जगत करी विस्तार ।।२३२।।
बेद-साख मथ करी ब्याह-विधि, सोइ कीन्हीं नृपराय ।
राम-लखन अरु भरत-सत्रुहन, चारौ दिये बिहाय[1] ।।२३३।।
होम, हवन, द्विज-पूजा, गनपति, सूरज, सक्र, महेस ।
दीनौं दान बहुत द्विजन[2] कौं, राजा मिथल[3]–नरेस ।।२३४।।
उतसव भयौ परम आनँद कौ, बहुत दायजौ दीनौ ।
भये बिदा दसरथ नृप नृप सौं, गमन अवधपुर कीनौं ।।२३५।।

परशुराम-संवाद

भृगुपति आये जानि जब रघुपति, मिले धाय सिर नाय ।
दसरथराय विनय बहु कीनीं, जिय मैं अति डरपात ।।२३६।।
तब मुनि कह्यौ धनुष क्यौ तोरयौ, रुद्र परम गुरु मेरे ।
रामचंद्र पूरन पुरुषोत्तम, नैक नैन जब हेरे ।।२३७।।
लीन्हौं अंस खैंच भृगुपति कौ, अपुने रूप समायौ ।
करौ जाय तप सैल महेन्द्र पै, सुनि मुनिवर सिर नायौ ।।२३८।।

अयोध्या-आगमन

अति आनंद अयोध्या आये, कियौ नगर-शृंगार ।
कदली खंभ, चौक मोतिन के, बाँधी बंदनबार ।।२३९।।
कियौ प्रबेस राज-भवनन मैं, रामचंद्र सुख-रास ।
अदभुत भवन बिराजत रतनन, सूरज कोटि प्रकास ।।२४०।।
द्वादस बरष बिराजे बालक, फिर भू-भार हरौ ।
कैकेई-बचन प्रमान किये नृप, तब यह काज करौ ।।२४१।।

राम-वनोवास

बचन समुझ नृप आज्ञा कीनीं, दैव उपाय करौ ।
रामचंद्र पितु-आज्ञा मानी, जिय मैं बचन धरौ ।।२४२।।
यह भू-भार उतारन रघुपति, बहुत ऋषिन सुख दैन ।
बनोबास कौं चले सिया सँग, सुख-निधि राजिब-नैन ।।२४३।।

---

१ बिबाय (न) (बं). २ विप्रन (न) (बं). ३ मिथिल (न) (बं)

मारग मै हरि कृपा करी है, परम भक्त एक जान ।
तहाँ तैं गए जु चित्रकूट कौ, जहाँ मुनिन की खान ॥२४४।
बालमीक मुनि बसत निरंतर, राम-मंत्र उच्चार ।
ताकौ फल यह आज भयौ मोहि, दरसन दियौ कुमार ॥२४५।'
पूजा कर पधराय भवन मैं, रामचंद्र परनाम ।
कियौ बिबिध बिधि पूजा करिकै, ऋषि-चरनन सिर नाम ॥२४६॥
बहुत दिबस लौ वसे जगत-गुर, चित्रकूट निज धाम ।
किये सनाथ बहुत मुनि कुल कौं, बहु बिधि पूरे काम ॥२४७॥
भरत जान जिय मैं रघुपति कौ, दुःसह परम वियोग ।
आए धाय संग सब लैकै, पुरबासी, गृह-लोग ॥२८॥
बिन दसरथ सब चले तुरत ही, कौसलपुर के बासी ।
आए, रामचंद्र मुख देख्यौ, सबको मिटी उदासी ॥२४९।
रामचंद्र पुनि सब जन देखे, पिता न देखन पाये ।
पूछी बात, कह्यौ तब काहू, मन बहु बिधि बिलखाये ॥२५०॥
बेद-क्रम[1] करि रघुपति सब बिधि, मरजादा अनुसार ।
बहुत भाँति सब बिधि समुझाए, भरत करी मनुहार ॥२५१।
गुरु बसिष्ठ मुनि कह्यौ भरत सौं, राम ब्रह्म-अवतार ।
बन मैं जाय बहुत मुनि तारैं, दूर करैं भुव-भार ॥२५२॥
पुन निज बिस्व रूप जो अपनौ, सो हरि भरत[2] दिखायौ ।
आज्ञा पाय चले निज पुर कौं, प्रभुहिं गीत समुझायौ ॥२५३॥
कछु दिन बसे जु चित्रकूट मैं, रामचंद्र सह भ्रात ।
तहाँ तैं चले दंडकाबन कौं, सुखनिधि साँवल गात ॥२५४॥
मारग मैं बहु मुनि-जन तारे, अरु बिराध रिपु मारे ।
बदन कर सरभंग महामुनि, अपने दोष निवारे[3] ॥२५५॥
दरसन दियौ सुतीच्छन-गौतम, पंचवटी पग धारे ।
तहाँ दुष्ट सूपनखा नारी, करि बिन नाक उधारे ॥२५६॥
यह सुनि असुर प्रबल दल आये, छिन मैं राम संहारे ।
कीन्हे काज सकल सुर-मुनि के, भुव के भार उतारे ॥२५७॥

---

१ रीति (न) (बं) २ जाय (न) (बं) ३ बिचारे (रा)

मुनि अगस्त्य आस्रम जु गए हरि, बहु विधि पूजा कीन्हीं ।
दिव्य वसन दीने जब मुनि नैं, फिर यह आज्ञा दीन्हीं ।।२५८।।
दसकंधर कौं बेगि संहारो, दूर करो भुव-भार ।
लोपामुद्रा दिव्य बस्त्र लै, दीने जनक-कुमारि ।।२५६।।
सूपनखा जब जाय पुकारी, नाक-कान लै हात ।
रावन क्रोध कियौ अति भारी, अधर फरक अति गात ।।२६०।।
गयौ मारीच आस्रम तबही, वानैं वह समझायौ ।
तब मारीच कह्यौ दसकंधर, बिनती बहुत करायौ ।।२६१।।
रामचंद्र अवतार कहत हैं, सुनि नारद मुनि पास ।
प्रगट भये निसिचर मारन कौं, सुनि वह भयौ उदास ।।२६२।।
कर गहि खडग, तोर बध करिहौं, सुनि मारीच डर मान्यौ ।
रामचंद्र के हाथ मरूंगौं, परम पुरुष फल जान्यौ ।।२६३।।

सीता-हरण

कपट कुरंग रूप धरि आयौ, सीता विनती कीन्हीं ।
रामचंद्र कर सायक लैकै, मारन की बिधि कीन्हीं ।।२६४।।
मारचौ धनुष-बान लै ताकौं, लछमन नाम पुकारचौ ।
लछमन नाम सुनत तहाँ आये,[1] औसर दुष्ट बिचारचौ ।।२६५।।
धरिकै कपट भेष भिक्षुक कौ, दसकंधर तहाँ आय ।
हरि लीन्हीं छिन मैं माया करि, अपने रथ बैठाय ।।२६६।।
चल्यौ भाजि गोमाय जंतु ज्यौं, लै केहरि कौ भाग ।
इतनैं रामचंद्र तहाँ आये, परम पुरुष बड़भाग ।।२६७।।
जब माया सीता नहीं देखी, जिय मैं भये उदास ।
पूछन लगे राम द्रुम गन सौं, बहुत बढ़ी दुख-रास ।।२६८।।
पैंड़े[2] मैं जटायु खग देख्यौ, विकल भयौ तन हीन ।
बिनती करी, राम ! मैं तासू, बहुत लड़ाई कीन ।।२६९।।
जब तन तज्यौ, राम नैं ताकी बहुत[3] करम बिधि कीनौं ।
जान्यौ सखा राम दसरथ कौ, अपनी निज गति दीनौं ।।२७०।।

१ सुनि लछमन नाम छिन में तहाँ आये (रा), २ मारग (न) (बं), ३ग्ध्र रघुपति तब (न) (बं)

पैड़े[1] मैं कबंध रिपु मार्‍यौ, सुरपति काज सँवार्‍यौ।
पपासर[2] हरि तुरत पधारे, जल कौ दोष निबार्‍यौ ॥२७१।

सीता की खोज

सिबरी परम भक्त रघुपति की, बहुत दिनन की दासी।
ताके फल आरोगे रघुपति, पूरन भक्ति प्रकासी ॥२७२।
दीन मुक्ति निज पुर को तार्कौं, तब रघुपति चले आगे।
सीता-सीता बिलपत डोलत, परम बिरह सौं पागे ॥२७३।
रबिनंदन जब मिले राम कौं, अरु भेंटे हनुमान।
अपनी बात कही उन हरि सौं, बालि बड़ौ बलवान ॥२७४॥
सप्तताल बेधन हरि कीन्हौं, बालि छिनक मैं तारौ।
दीनौं राज राम रबिनंदल, सब बिधि काम संबारौ ॥२७५॥
सप्तदीप के कपि-दल आए, जुरी सैन अति भारी।
सीता की सुधि लैन चले कपि, ढूँढ़त बिपिन मझारी ॥२७६॥
जलनिधि तीर गए सब कपि मिलि, सुनि संपात की बानो।
लक बसत सीता रिपुब्रन मैं, सब बानर यह जानी ॥२७७॥
राम-चरन कर सुमिरन मन मैं, चले पवन-सुत धाय।
राम-प्रताप बिघन सब मेटे, पैठि नगर सुख पाय ॥२७८॥
धरि लघु रूप प्रबेस कियौ कपि, लंका नगर मँझार।
राम भक्त निज जान बिभीषन, भेंटे हरि अँकबार ॥२७९॥
तब वानैं सब भेद बतायौ, देखी कपि सब लंक।
राम-चरन धरि हृदय मुदित मन, बिचरत फिरत निसंक ॥२८०॥
जाय असोकबाटिका देखी, दरसन सीता कीन्ह।
कर दंडौत बहुत बिनती कर, राम-मुद्रिका दीन्ह ॥२८१॥
सब संदेस कह्यौ कपि सिय प्रति, सुनि हिय मैं धरि राख्यौ।
राम-संदेस कह्यौ तब सीता, जो बूझौ सो भाख्यौ ॥२८२॥
लागी भूख, चले उपबन मैं, नाना बिधि फल खाये।
बिटप उखारि, उजार बिपिन कौं, सबहिन कौं दरसाये ॥२८३॥

---

१ मारग (न) (ब , २ पुर (न पुर (ब

सुनि पुकार निसिचर बहु आए, कूदि सबन सहारे ।
इंद्रजीत बलनिधि जब आयौ, ब्रह्म-अस्त्र उन डारे ॥२८४॥
तासौं बँधे, दसानन देखत चले पवन-सुत भीर ।
रावन बहुत ज्ञान समझायौ, कथ-कथ कथा गभीर ॥२८५॥
चले छुड़ाय छिनक मैं तबहीं, जार दई सब लंक ।
कूदि चले गज-बन की जै करि, ज्यौं मृगराज निसंक ॥२८६॥
आए तीर समुद्र, मिले कपि, मिल आये जहाँ राम ।
सुनि-सुनि कथा श्रवन सीता की, पुलकित अति अभिराम ॥२८७॥

लंका-विजय

करि कपि-कटक चले लंका कौं, छिन मैं बाँध्यौ सेत ।
उतर गए, पहुँचे लंका पै, बिजय धुजा संकेत ॥२८८॥
पठये बालि-कुमार बिनै करि, समझाये बहु बार ।
चित नहिं धरौ, काल-बस जान्यौ, फिर आये सुकुमार ॥२८९॥
असरन-सरन उदार कल्पतरु, रामचंद्र रनधीर ।
रिपु-भ्राता जान्यौ जु बिभीषन, निसिचर कुटिल सरीर ॥२९०॥
राख्यौ सरन, लंकेस कियौ पुनि, जब निसिचर सब मारे ।
माया करी बहुत नाना बिधि, सब कूँ राम निबारे ॥२९१॥
कुंभकरन पुन इंद्रजीत यह, महाबली बल-सार ।
छिन मैं लिए सोख, मुनिवर ज्यौ क्षत्री बली अपार[1] ॥२९२॥
कियौ प्रसाद साँतुना करिकै, राज बिभीषन दीनौं ।
करि[2] मंदोदरि अचल, आयुस दै अभयदान सब कीनौ ॥२९३॥
समाधान सुरगन कौ करिकै, अमृत-मेघ बरषायौ ।
कृपा-दृष्टि अबलोकन करिकै, हत कपि-कटक जियायौ ॥२९४॥
निसिचर किए मुक्त सब मारौ, तातें जिये न कोय ।
निरभै कियौ लंकेस बिभीषन, राम-लखन नृप दोय ॥२९५॥
सीता मिली, बहुत सुख पायौ धरयौ रूप निज भायौ ।
पुष्प-बिमान[3] बैठिकै नीके, चले भवन सुख छायौ ॥२९६॥

---

१ ज्यों रूप बल अपार (रा)　२ पुनि (न) (बं)　३ पुष्पक-यान (न) (ब)

राम-राज्य

चले पवन-सुत बिप्र-रूप धरि, भरतहिं दैन बधाई।
जानि दूत रघुपति कौ, प्रमुदित भरत मिले तब धाई ॥२९७॥
सुनत नगर सबहिन सुख मान्यौ, जहाँ-तहाँ तैं चले धाई।
रामचंद्र पुनि मिले भरत सौं, आनंद उर न समाई ॥२९८॥
कियौ प्रवेस अजोध्या मै तब, घर-घर बजत बधाई।
मंगल-कलस धराए द्वारे, बंदनबार बँधाई ॥२९९॥
राजभवन मैं राम पधारे, गुरु बसिष्ठ दरसायौ ।
सीस नवाय बहुत पूजा करि, सूरज-बंस बढ़ायौ ॥३००॥
समाधान सबहिन कौ कीन्हौं, जो दरसन कौं आयौ।
कौसल्या-केकई-सुमित्रा, मिल मन मैं सुख पायौ ॥३०१॥
बैठे राम राज-सिंहासन, जग मैं फिरत[1] दुहाई ।
निरभै राज राम कौ कहियत, सुर-नर-मुनि सुख पाई ॥३०२॥
चार मूर्ति धरि दरसन आए, चार बेद निज रूप।
अस्तुति करी बहुत, नाना विधि रिझये कौसल-भूप ॥३०३॥
सिब–बिरंच–नारद–सनकादिक, सब दरसन कौं आए।
राम राज बैठे जब जाने, सबहिन मन सुख पाए ॥३०४॥
लोकपाल अति ही मन हरषे, सब सुमनन बरसाये ।
पुष्प-बिमान बैठि हरि आए, लै कुबेर पहुँचाये ॥३०५॥
अति आनंद भयौ अबनी पर, राम-राज सुख-रास[2] ।
कृतयुग-धर्म भए त्रेता मै, पूरन रमा-प्रकास ॥३०६॥
अस्वमेध बहु जज्ञ किये पुनि, पूजे द्विजन अपार ।
हय–गज–हेम–धेनु–पाटंबर, दीने दान उदार ॥३०७॥
चरित अनेक किये रघुनायक, अवधपुरी सुख दीनौ।
जनक-सुता बहु लाड़ लड़ावत, निपट निकट सुख कीनौं ॥३०८॥
जान बसंत बहुत द्रुम फूले, जनक-सुता अनुरागे ।
प्रेम-प्रवाह प्रगट प्रगटायौं, होरी खेलन लागे ॥३०९॥

१ फिरी (न) (बं) २ दास (रा) (न) (बं)

कबहुँक निकट देखि बरषा रितु, झूलत सुरँग हिंडोरे।
रमकत-झमकत जनक-सुता सँग, हाव-भाव चित चोरे ॥३१०॥
कबहुँक कमल-सरोबर उपबन, जनक-सुता सँग लीने।
नाना जल-बिहार बिहरत हैं, संत जनन सुख दीने ॥३११॥
कबहुँक रतन-महल चित्रसारी, सरद-निसा उजियारी।
बैठे जनक-सुता सँग बिलसत, मधुर केलि मनुहारी ॥३१२॥
कबहुँक अगर-धूप नाना विधि, लिय सुगंध सुखकारी।
कबहुँक निरतत देव-नटी लखि, रीझत हैं सुख भारी ॥३१३॥
राम-बिहार कह्यौ नाना विधि, बालमीक मुनि गाये।
बरनत चरित्र विस्तार कोटि सत, तऊ पार नहिं पाये ॥३१४॥
'सूर'[1] समुद्र की बूँद भई यह, कवि बरनन कहा करिहै।
कहत चरित्र रघुनाथ, सरस्वती बौरी मति अनुसरिहै ॥३१५॥
अपने धाम पठाय दिए तब, पुरबासी सब लोग।
जै-जै-जै श्री राम कल्पतरु, प्रगट अजोध्या भोग ॥३१६॥

(परशुराम अवतार का पुनः उल्लेख)

दुष्ट नृपति जब बैठे भुव पर, धरि भृगुपति कौ रूप।
छिन मैं भुव कौ भार उतारयौ, परसुराम द्विज-भूप ॥३१७

२० व्यास अवतार

व्यास रूप ह्वै बेद बिस्तरे, कीन्हे प्रगट पुरानन।
नाना वाक्य धर्म थापन कौं, तिमिर हरन भुव-भारन ॥३१८

२१. बुद्ध अवतार

बुद्ध रूप कलि-धर्म प्रकास्यौ, दया सबन कौ मूल।
दूर कियौ पाखंडबाद, हरि-भक्तन कौं अनुकूल ॥३१९॥

२२. कल्कि अवतार

कलि के आदि, अंत कृतयुग के, है कलकी अवतार।
मारि मलेच्छ धर्म फिर थाप्यौ, भयौ जग जैजैकार ॥३२०॥

---

१ सुर (रा) (न)

अन्य अवतार

कर्मवाद थापन कौं प्रगटे, पृश्नि गर्भ अवतार ।
सुधा-पान दीन्हौं सुरगन कौं, भयौ जग जस-विस्तार ।।३२१।।
असुरन कौं व्यामोह कियौ हरि, धरौ मोहनी रूप ।
अमृत-पान कराय सुरन कौं, कीन्हे चरित्र अनूप ।।३२२।।
तैसै ही भुव-भार उतारन[1], हरि हलधर अवतार ।
कालिंदी आकर्ष कियौ हरि, मारे दैत अपार ।।३२३।।
गज अरु ग्राह लरे जल भीतर, तब हरि सुमिरन कीन्हौं ।
छाँड़ि गरुड़ सुख धाम सांवरौ, भक्तन कौं सुख दीन्हौं ।।३२४।।
जब बहु असुर बढ़े पृथिवी[2] पर, कियौ अनर्थ-विस्तार ।
सत्यसेन प्रगटे विश्वंभर, सत्य कियौ है अपार ।।३२५।।
निज बैकुंठ बसाय रमापति, कियौ रमा कौ हेत ।
बिनती सुनि कमला की केसव, कीन्हौं सुख-संकेत ।।३२६।।
ब्रह्मचर्य-थापन के कारन, धरयौ विभू अवतार ।
जहाँ-तहाँ मुनिवर निज मर्जादा, थापी अघट अपार ।।३२७।।
अजित रूप ह्वै सैल धरौ हरि, जलनिधि मथिवे काज ।
सुर अरु असुर चकित भये देखत, किये भक्त के काज ।।३२८।।

२३. वामन अवतार (बलि की कथा)

जब बलिराजा गये देवपुर, लीन्हौं स्वर्ग छुड़ाय ।
अदिती दुखित भई, कस्यप सौं बिनती करी सुनाय ।।३२९।।
तब कस्यप मुनि कह्यौ, पयोव्रत विधि सौ करौ[3] बनाय ।
ताकी कुख जन्म हरि लीन्हौं, श्री बामन सुखदाय ।।३३०।।
भादौं श्रवण द्वादसी सुभ दिन, धरयौ विप्र हरि रूप ।
सिव-बिरंचि-सनकादिक आये, बंदन कौं सूर[4]-भूप ।।३३१।।
यज्ञोपवीत विधोक्त कियौ विधि, सब सुर भिक्षा दीन्हीं ।
बामन रूप चले हरि द्विजवर, बलि की मन सुधि कीन्हीं ।।३३२।।

---

१ तैसें ही भुअ भारन कूं (रा), २ पुहमी (रा), ३ कह्यौ (रा), ४ (न) (बं)

दंड-कमंडल हाथ बिराजत, और ओढ़े मृगछाला ।
धरि बटु रूप चले बामन जू, अंबुज नैंन बिसाला ॥३३३।
सूरज कोट प्रकास अंग मैं, कटि मेखला विराजै ।
करी बेद धुनि नृप द्वारे[1] पै, मनहुँ महाघन गाजै ॥३३४।
सुनि धाये तबहीं बलिराजा, आय चरन सिर नायौ ।
बिनती करी बहुत सुख मान्यौ, आज भयौ मन भायौ ॥३३५।
चलिये विप्र जज्ञ-साला मैं, जहाँ द्विजवर सब राजैं ।
आये ब्रह्म-सभा मैं बामन, सूरज तेज बिराजैं ॥३३६।
तब नृप कह्यौ कछू द्विज माँगौ, रतन-भूमि-मनिदान ।
हय-गज-हेम-रतन-पाटंबर, देहौं प्रगट प्रमान ॥३३७।
तब बोले बामन यह बानी, सुनि प्रहलाद-कुल-भूप ।
बहुत प्रतिग्रह लेत विप्र जो, जाय परत भव-कूप ॥३३८।
तीन पैंड़ बसुधा हम पावैं, परनकुटी एक कारन ।
जब नृप भुश्र संकल्प कियौ है, लागे देह पसारन ॥३३९।
एक पैंड़ मैं वसुधा नापी, एक पैंड़ सुरलोक ।
एक पैंड़ दीजे बलिराजा, तब ह्वै हौ बिन सोक ॥३४०।
नांपौ देह हमारी द्विजवर, सो संकल्पन कीन्हौं ।
सुनि प्रसन्न बामन यौं बोले, तैं मोकूं बस कीन्हौं ॥३४१।
सदा द्वार तेरे ठाड़ौ ह्वैं, दरसन देहौं तोहिं ।
माया-काल कबहुँ नहिं व्यापै, सुमिरन करतैं मोहिं ॥३४२।
सुतललोक मैं थिर करि थाप्यौ, जहाँ विभूति अति भारी ।
गहिकै गदा द्वार पर ठाड़े, बामन ब्रह्म मुरारी[2] ॥३४३।
स्वर्ग लोक दीन्हौं सुरपति कौं, पुनि थिरकर कर थाप्यौ ।
निगम नेति कहि रटत निरंतर, देव-सत्रु सब कांप्यौ ॥३४४॥
बामन रूप ब्रह्म हरि प्रगटे, जिनकौ जस जग गावै ।
सेस सहस्र मुख रटत निरंतर, 'सूर'[3] पार किमि[4] पावै ॥३४५॥

---

१ पौंर (रा), २ पुरारी (रा), ३ सुरज (रा), ४ क्यम (रा)

(पुनः अन्य अवतार)

पुनि बलि राजहिं[1] स्वर्गलोक मैं, थापैंगे हरिराय ।
सर्वभौम[2] अवतार धरैंगे, श्री बामन सुखदाय ॥३४६॥
पुनि बिभुरूप एक हरि लैगे, सकल जगत कल्यान ।
कपट खंड पाखंड असुर कौं, थापैं भक्त निदान ॥३४७॥
विष्वकसेन रूप हरि लैगे, कीन्हौं सिब कौ हेत ।
असुर मारि सब तुरत बिड़ारे, दीन्हे रुद्र-निकेत ॥३४८॥
धर्म सेत ह्वै धर्म बढ़ायौ, भुव कौं धारन कीनौ ।
सेस-रूप ह्वै धरी[3] सीस, फिर सब जग कूं सुख दीनौं ॥३४९॥
अंतरजामी, पालन कारन, निज सुधर्म धरि रूप ।
अन्न-दान दै सब जग पोष्यौ, किये काज सुर-भूप ॥३५०॥
जोग-पंथ पातंजलि भाष्यौ, सोऊ छीन सब जान्यौ ।
जोगेस्वर बपुधर हरि प्रगटे, जोग-समाधि प्रमान्यौ ॥३५१॥
क्रिया पंथ स्रुति नें जो भाष्यौ, सो सब असुर मिटायौ ।
ब्रहदभानु ह्वैकैं हरि प्रगटे, छिन मैं फिर प्रगटायौ ॥३५२॥
ऐसे[4] अनेक अवतार कृष्ण के, को कवि[5] सकै बखान ।
सोई 'सूरदास' नें बरने, जो कहे व्यास पुरान ॥३५३॥
अंस कला अवतार स्याम के, कवि पै कहत न आवै ।
जहाँ-जहाँ भीर परत भक्तन पै, तहाँ-तहाँ बपु धरि धावै ॥३५४॥
माया—काल—ईस—चतुरानन, चतुरव्यूह निज रूप ।
वायु-बरुन और जम-कुबेर-ससि, मृत्यु-अग्नि-सुरभूप ॥३५५॥
रवि—ससि—भृगु—मरीच—सुरगुरु, अरु च्यार वेद बपु जान ।
जग कौं प्रगट करन परजापति, प्रगटे कला-निधान ॥३५६॥
जो-जो भूप भए भुव-मंडल, लोकपाल[6] निज जान ।
निज महिमा[7] हरि प्रगट करी है, विधि के बचन प्रमान ॥३५७॥

---

१ राजा (रा), २ सार्बभूम (रा), ३ धरा (न) (बं), ४ यह (न)(बं), ५ कवि (न) (बं), ६ कल्पपाल (रा), ७ माहात्म (रा)

सुर अरु असुर रची हरि रचना, सो जग प्रगट सब कीन्हीं।
क्रीड़ा करी बहुत, नाना बिधि निगम बात दृढ़ चीन्हीं ॥३५८।
यहि बिधि होरी खेलत-खेलत, बहुत भाँति सुख पायौ।
धरि अवतार जगत मैं नाना, भक्तन चरित्र दिखायौ ॥३५९।
अस-कला अवतार बहुत बिधि, राम-कृष्ण अवतारी।
सदा बिहार करत ब्रज मंडल, नंद-सदन सुखकारी ॥३६०।

२४. कृष्ण अवतार

नित्य-अखंड-अनूप-अनागति, अविगत-अनघ-अनंत।
जाकौ आदि कोऊ नहिं जानत, कोऊ न पावत अंत ॥३६१।
जब हरि-लीला की सुधि कीन्हीं, प्रगट करन विस्तार।
श्री वृषभान रूप ह्वै प्रगटे, पुनि ब्रजराज उदार ॥३६२।
विद्या ब्रह्म कही जसुमति सौं, जाकी कूख उदार।
सोरह कला चंद ज्यौं प्रगटे, दोनौं तिमिर बिदार ॥३६३।
पुन बसुदेव-देवकी कहियत, पहिलै हरि-बर पायौ।
पूरन भाग्य आय हरि प्रगटे, जदुकुल-ताप नसायौ ॥३६४।

कृष्ण-चरित्र—

जन्म

आठैं बुद्ध रोहनी आई, संख-चक्र बपु धारौ।
कुंडल लसत किरीट महाद्युनि[1], बपु बसुदेव निहारयौ ॥३६५।
अस्तुति करी बहुत, नानाविधि रूप चतुरभुज देख्यौ।
पीतांबर और स्याम जलद बपु, निरखि सुफल दिन लेख्यौ ॥३६६
तब हरि कह्यौ, जन्म तुम्हरे गृह तीन बार हम लीनौं।
प्रश्नी गर्भ देव ब्राह्मण जो, कृष्ण रूप रँग-भीनौं ॥३६७।
माँगौ सकल मनोरथ अपने, मन-वांछित फल पायौ।
सख-चक्र-गदा-पद्म-चतुरभुज, अजन जन्म लै आयौ ॥३६८।
यह भुव-भार उतारन कारन, हलधर कूँ सँग लायौ।
क्रीड़ा करौं लोक पावन करु, करौं भक्त मन-भायौ ॥३६९।

---

१ श्री वत्स लसत क्रीट कुंडल दुत (रा)

प्राकृत रूप धरयौ हरि छिन मैं, सिसु ह्वै रोवन लागे।
तब बसुदेव देवकी निरखत, परम प्रेम-रस पागे ।।३७०।।

मथुरा से गोकुल-गमन

तब देवकी दीन ह्वै भाष्यौ, नृप कूं नाहि पतीजै।
अहो बसुदेव जाओ लै गोकुल, कह्यौ हमारौ कीजै ।।३७१।।
तब लै हरि पलना पौढ़ाये, पीतांबर जु ओढ़ायौ।
तब वसुदेव सीस धरि पलना, भयौ सबन मन-भायौ ।।३७२।।
गोकुल चले प्रेम-आतुर ह्वै, खुलि गये कपट-कपाट।
सोये स्वान, पहरुआ सोये, सबै मुक्त भई बाट ।।३७३।।
तब बसुदेव लियौ कर पलना, अपुने सीस चढ़ायौ।
रैन अँधेरी कछु नहिं सूझत, अटकर-अटकर आयौ ।।३७४।।
सेस सहस्र फन ऊपर छाये, घन की बूंद बचावै।
आगै सिंह हुंकारत आवत, निरभै बाट जनावै ।।३७५।।
जमुना अति जल पूर बहत है, चरन-कमल परसायौ।
मारग दीन्हौं राम सिंधु[1] ज्यौं, नंद-भवन चलि आयौ ।।३७६।।
पहुँचे आय महर-मंदिर मैं, नैक न संका कीन्हीं।
बालक धरि, लैकै सुरदेवी, सुरत गवन की कीन्हीं ।।३७७।।
लै बसुदेव तुरत घर आये, काहू जिय नहिं जाने।
जब वह रोवन लागी, तब सब जाग परे अकुलाने ।।३७८।।

कंस द्वारा बालिका-बध

बालक भयौ कह्यौ नृप सौं जब, दौरि कंस तब आयौ।
कर गहि खड्ग कह्यौ देवकि[2] सौं, बालक कहाँ पहुँचायौ ।।३७९।।
तब देवकी अधीन कह्यौ यह, मैं नहिं बालक जायौ।
यह कन्या मोहिं बकस बीर तू, कीजै मो मन-भायौ ।।३८०।।
कंस बंस कौ नास करत है, कहा समुझि रिसयानी।
मोकूं भई अनाहद बानी, तातैं डर नहिं जानी ।।३८१।।

---

१ चंद्र (रा). २ देवी (रा)

कन्या मांग लई तब राजा, नैंक संक नहिं आनी ।
पटकत सिला गई आकासै, कंस प्रतीति न मानी ।।३८२।।
भई अकास-बानी, सुरदेवी कंस यहाँ अब आई ।
तेरौ सत्रु प्रगट कहूं ब्रज मैं, काहु लख्यौ नहीं जाई ।।३८३।।
जैसे मीन करत जल-कीड़ा, जल मैं रहत समोई ।
त्यौं तुव काल प्रगट भयौ कहुँ एक, लखि न सकत तेहिं कोई ।।३८४।।
अंतरध्यान भई सुरदेवी, कंस प्रतीत जो मानी ।
तब बसुदेव-देवकी के गृह, कंस गयौ यह जानी ।।३८५।।
छम अपराध देवकी मेरौ, लिख्यौ न मेट्यौ जाई ।
मैं अपराध कियौ, सिसु मारे, कर जोरै, बिललाई ।।३८६।।
पुन गृह आय सेज पर सोयौ, नैंक नींद नहिं आवै ।
देस-देस के दूत बुलाये, सबहिन मतौ सुनावै ।।३८७।।
दीन-हीन जो असुर चढ़त बल, करत सकल पुनि तैसौ ।
बूझत नहीं तन भार उतारयौ, जल कौ माखन जैसौ ।।३८८।।

(१) ब्रज-लीला—

गोकुल में जन्मोत्सव

भयौ भोर जसुमति गृह आनंद, मंगलचार बधाई ।
जागी महरि पुत्र-मुख देख्यौ, आनंद उर न समाई ।।३८९।।
जैसें ससि प्रगटत प्राची दिसि, सकल कला भरिपूर ।
जसुमति-कूख आय हरि प्रगटे, असुर-तिमिर कर दूर ।।३९०।।
नंदराय-घर ढोटा जायौ, महर महासुख पायौ ।
विप्र बुलाय वेद-धुनि कीन्हीं, स्वस्ती बचन पढ़ायौ ।।३९१।।
जात-कर्म कर, पूजि पितर-सुर, पूजन विप्र करायौ ।
द्वै लख धेनु दई तेहि औसर, बहुतहिं दान दिवायौ ।।३९२।।
परबत सात तिलन के कीन्हें, रतनन ओघ मिलायौ ।
मागध, सूत और बंदीजन, ठौर-ठौर जस गायौ ।।३९३।।
बाजे बजत विचित्र भाँति सौं, रह्यौ घोष सब गाज ।
सुर सुमनन बरषावत गावत, व्यौम बिमानन साज ।।३९४।।

बाँधत बंदन–माल, साथियै द्वारैं धुजा सुहाई ।
कनक-कलस प्रति पौर बिराजत, मंगलचार बधाई ।।३९५।।
सुरभी-वृषभ सिगारे बहु बिधि, हरदी–तेल लगाई ।
सुवरन-माल बिचित्र धातुरँग, अँग-अँग चित्र बनाई ।।३९६।।
आये गोप भेंट लै-लै कै, भूषन--बसन सुहाये ।
नाना बिधि उपहार, दूध-दधि आगै धरि सिर नाये ।।३९७।।
जसुमति के गृह पुत्र प्रगट भयौ, सुनी सकल ब्रज-नारी ।
मगल–साज सँवार हाथ लैं, घर-घर मंगलकारी ।।३९८।।
अति आतुर ह्वै चलीं झुंड जुरि, सिर सुमनन बरसावैं ।
मानौं रीझ मधुप धरनी कौं, रस पराग दरसावैं ।।३९९।।
पहुँची जाय महर-मंदिर मैं, करत कुलाहल भारी ।
दरसन करि जसुमति-सुत कौ, सब लैंन लगीं बलिहारी ।।४००।।
नाँचत गोप परस्पर सब मिलि, छिरकत है नवनीत ।
दूध और दधि और हरद-जल, सींचत हैं कर प्रीत ।।४०१।।
जसुमति कूख सराहि, बलैया लैन लगीं ब्रज-नार ।
ऐसौ सुत तेरे गृह प्रगट्यौ, या ब्रज कौ शृंगार ।।४०२।।
जसुमति रानी देति बधाई, भूषन–रतन अपार ।
फूली फिरत रोहिनी मैया, नख-सिख कर शृंगार ।।४०३।।
देत असीस चलीं ब्रज-सुदरि, जिय उपज्यौ सुख भारी ।
गृह-पूजन सब कियौ बेद-बिधि, नंदराय सुखकारी ।।४०४।।
देस-देस तैं ढाढ़ी आये, मन बांछित फल पायौ ।
को कहि सकै दसौंधी, उनकौ भयौ सबन मन-भायौ ।।४०५।।
ता दिन तैं सगरे या ब्रज मैं, रमा रूप दरसायौ ।
निज कुल वृद्ध जान इक ढाढ़ी, गोबर्द्धन तैं आयौ ।।४०६।।
परम उदार महर ब्रजपति जू, ढाढ़ी निकट बुलायौ ।
बाजत हुडुक–मजीरा–नूपुर, नाना भाँति नँचायौ ।।४०७।।
झगा–पगा और पाग–पिछौरा, ढाढ़ी[1] कौं पहिरायौ ।
हरि दरियाई, कंठ लगाई[2], परदर सात उठायौ ।।४०८।।

१ ढाढ़िन (न) (बं), २ कंठगलउ (रा)

बहुत दान दीन्हे उपनँद जू, रतन–कनक–मनि–हीर।
धरानंद धन बहुतहि दीन्हौं, ज्यौं बरसत घन-नीर ॥४०९॥
कुंडल कान, कंठ माला दै, ध्रुवनंद अति सुख पायौ।
सीधौ बहुत सुरसुरानंदै, गाड़ा भरि पहुँचायौ ॥४१०॥
कर्मा–धर्मानंद कहत हैं, बहुतहिं दान दिवायौ।
ब्रजरानी ढाढ़िन पहिराई, मनवांछित फल पायौ ॥४११॥
चले भवन कौं दै असीस दोउ, निरभै कीरत गावैं।
जिन जाँचे ब्रजपति उदार अति, जाचक फिर न कहावैं ॥४१२॥
नाना बिधि के बिबिध खिलौना, रतनन अधिक अमोले।
ताकूं लैन गये मथुरा कौं, आनक दुंदुभि बोले ॥४१३॥
बेग जाओ गोकुल तुम अब ही, सुनियत हैं उतपात।
सुनि ब्रजराज तुरत घर आये, जिय मैं अति अकुलात ॥४१४॥

पूतना-बध

प्रथम पूतना कंस पठाई, अति सुंदर बपु धारयौ।
घसिकै गरल लगाय उरोजन, कपट न कोउ निहारयौ ॥४१५॥
लिये उठाय स्यामसुदर कौ, थन गहिकै मुख लीनौं।
लीन्हें खैंच प्रान विष-पय जुत, देह बिकल तन[1] कीनौं ॥४१६॥
छाँड़ि-छाँड़ि कहि परी धरनि पर, कर-चरनन जु पसार।
जोजन डेढ़ बिटप–बेली सब, चूर–चूर कर डार ॥४१७॥
ताकूँ जननी की गति दीन्हीं, परम कृपाल गोपाल।
दीन्हौ फूँक काठ तन वाकौ, मिलिकै सकल गुवाल ॥४१८॥
इतनें नंदराय जू आये, कौतुक सुनि यह भारी।
विस्मित भये देव नें राख्यौ, बालक यह सुखकारी ॥४१९॥
विप्र बुलाय वेद-धुनि कीन्हीं, रक्षा बहुत कराई।
आरति बिबिध उतार महरजू, मंगल करत बधाई ॥४२०॥
एक दिना हरि लई करौंटी, सुन हरषी नंदरानी।
विप्र बुलाय स्वस्ति-वाचन करि, रोहनी नैन सिरानी ॥४२१॥

---

१ तब (न) (बं),

नित मंगल, नित होत कुलाहल, नित-नित बजत बधाई ।
भादौ देवछट्ट कौ सुभ दिन, प्रगट भये बलभाई ॥४२२॥
वर्ष दिवस पहिलैं, ब्रज मंडल सेस महाबपु लीन्हौ ।
अपनौ धाम जान प्रगटौ भुव, रूप प्रगट निज कीन्हौ[1] ॥४२३॥

शकट-भंजन

कंस नृपति नें सकट बुलायौ, लै कर बीरा दीन्हौ ।
आय नंद–गृह द्वार नगर मैं, रूप सकट कौ कीन्हौ ॥४२४॥
मारी लात स्याम पलना तै, पर्यौ धरनि भहराय ।
जहँ-तहँ तें दौरे ब्रजवासी, स्यामहिं लियौ उठाय ॥४२५॥
बच्छ-पुच्छ लै दियौ हाथ पर, मंगल–गीत गवायौ ।
जसुमति रानी कूख सिरानी, मोहन गोद खिलायौ ॥४२६॥
एक दिन स्तन-पान करावत, जसुमति अति बड़भागी ।
बदन पसार बिस्व दिखरायौ, छिनक मूरछा जागी ॥४२७॥

तृनावर्त बध

त्रनावर्त बिपरीत महा खल, सो नृपराय पठायौ ।
चक्रबात ह्वै सकल घोप मैं, रज–धूँधर ह्वै छायौ ॥४२८॥
चल्यौ उठाय गोपाल व्यौम मै, तब हरि कंठ गहायौ ।
पटक्यौ सिला खरिक के आगै, छिन निर्जीब करायौ ॥४२९॥

नाम-करण संस्कार

गर्गराज मुनिराज महाऋषि, सो वसुदेव पठायौ ।
नाम करन ब्रजराज महर घर, अति आनंदित आयौ ॥४३०॥
नाम–करन कीन्हौ दुहून को, नारायन सम भाषे ।
तुम्हरे दुःख[2] मिटावन कारन, पूरन कौं अभिलाषे ॥४३१॥
राम–कृष्ण अवतार मनोहर, भक्तन के हित काज ।
बहुतहि काज करैंगे तुम्हरे, सुनहु महर ब्रजराज ॥४३२॥

कागासुर बध

एक दिना पलना हरि पौढे, नंद महर के द्वार ।
नंदरानी ग्रह–कारज लागी, नाहिन लई सँभार ॥४३३॥

---

१ निज प्रागट कीन्हों (रा), २ तुमरे दुर्ग (रा)

कंस नृपति एक असुर पठायौ, धरयौ काग कौ रूप ।
सनमुख जाय नयन दोऊ जोरे, देख्यौ स्याम कौ रूप ।।४३४।
कंठचाप बहु बार फिरायौ, पटक्यौ नृप के पास ।
एक जाम मैं बचन कह्यौ यह, प्रगट भयौ तुव नास ।।४३५।
यह कहिकै तन त्याग कियौ उन, कंस नृपति के आगै ।
भयौ उदास, सुहात न कछुए, छिन सोवत, छिन जागै ।।४३६।

बाल-लीला

एक दिना ब्रजराज महर जू, और जसोदा रानी ।
घुटुरुन चलत स्याम कों देखत, बोलत अमृत–बानी ।।४३७।।
इततै नंद महर बोलत हैं, उततैं जननि बुलावत ।
सुदर स्याम खिलौना कीन्हौ, हँसि-हँसि मोद[1] बढ़ावत ।।४३८।।
ससि कूँ देखि आर[2] हरि ठानी, कर मनुहार मनावत ।
मधु-मेवा-पकवान-मिठाई, बिबिध खिलौना लावत ।।४३९।।
कमलनैन कौ महर जसोदा, जल प्रतिबिंब दिखावत ।
फेरत हाथ चंद पकरन कौं, नाहिन होत लखावत ।।४४०।।
बूढ़े बाबू दरसन आये, लाय चद्रमनि दीनीं ।
ताकूं देख आर सब छाँड़ी, भोजन की सुधि कीनीं ।।४४१।।
औटयौ दूध कपूर मिलायौ, प्यावत कनक-कटोरे ।
पीवत देखि रोहनी-जसुमति, डारत हैं तृन तोरे ।।४४२।।
कछु दिन भये संग दोउ बालक, बल-मोहन दोउ भाई ।
चोरी करत, हरत दधि-माखन, लीला कहिय न जाई ।।४४३।।
सब ब्रज-नारि उराहन आई, ब्रजरानी के आगे ।
मैं नाहिन दधि खायौ याकौ, सिसु ह्वै रोवन लागे ।।४४४।।
एक दिना ब्रजपति की पौरी, खेलत हरि ब्रज-बाल ।
माटी खाय बदन दिखरायौ, चंचल नैन बिसाल ।।४४५।।
सकल ब्रह्मांड बदन मैं देख्यौ, ब्रजमंडल–पाताल[3] ।
नंद महर, जसुदा-रोहिनि, पुनि धेनु, सकल ब्रज–ग्वाल ।।४४६।।

---

१ गोद (रा), २ और (बं), ३ रातल (न) (बं)

हृदय ज्ञान उपज्यौ तब जसुमति, पूरन ब्रह्म बिसेखे ।
हरि उपजाई माया तब, सब बहुरि पुत्र कर लेखे ॥४४७॥

ऊखल बंधन

एक दिना दधि-मथन करत ही, महर घोष की रानी ।
हरि माँग्यौ माखन नहिं दीन्हौं, तब मन में रिस ठानी ॥४४८॥
फोरयौ भांड, दही आंगन में फैल परयौ अति भारी ।
दौरी पकर देत नहिं मोहन, अति आतुर महतारी ॥४४९॥
जानी बिकल बहुत जननी कौं, हरि पकराई दीनी ।
बहुत दाम लै बांधन लागी, आंगुर द्वै भई हीनी ॥४५०॥
व्याकुल भई बँधत नहिं मोहन, दया स्याम कूं आई ।
ऊखल दाम बँधे हरि जाने, गोपी देखन धाई ॥४५१॥
तौलौं बँधे स्याम दामोदर, जौलौं यह कृति कीन्हो ।
देख दुखित द्वै सुत कुबेर के, कृपादृष्टि रति[1] दीन्ही ॥४५२॥
नारद मुनि कौ स्राप पायकै, स्याम दई गति ताय ।
निकसे बीच अटक ऊखल में, स्याम रहे अटकाय ॥४५३॥
चरन परसि तें पुलक भई भुग्र, परे वृक्ष भहराय ।
भयौ सब्द-आघात स्वर्ग लौं, सुनि आये ब्रजराय ॥४५४॥
अस्तुति कर वे गये स्वर्ग कूं, अभै हाथ कर दीन्हौं ।
बधन छोरि नंद बालक कौ, लै उछंग कर लीन्हौं ॥४५५॥
जसुमत जू सौं लरे महर जू, तुम क्यौं बांध्यौ दाम ।
गर्ग कह्यौ मो, हैं नारायन, आये हैं बल-स्याम ॥४५६॥
जसुमत माय धाय उर लीन्हे, राई-लौन उतारौ ।
लेत बलाय रोहिनी नीकै, सुंदर रूप निहारौ ॥४५७॥
कबहुँक कर करताल बजावत, नाना भाँति नँचावत ।
कबहुँक दधि-माखन के कारन, आछी आर मचावत ॥४५८॥

गोकुल से प्रस्थान

बड़े गोप उपनंद बुलाये, नंद महर के धाम ।
कीन्हौं मंत्र गोप सब मिलि कै, जेहि बिधि पूरन काम ॥४५९॥

---

१ कर (न) (बं)

बहु उतपात रहत हैं गोकुल, नित प्रति कंस पठायौ ।
अंत जाय कहुँ बास करैंगे, बालक देव बचायौ ॥४६०॥
अब वृंदाबन जाय रहैंगे, जहाँ बीरुध त्रिन–पानी ।
चले गोप अति ओप विराजैं, बोलत हो-हो बानी ॥४६१॥
जमुना उतर, आये वृंदाबन, जहाँ सुखद द्रुम राजैं ।
गोवर्द्धन--वृन्दाबन--जमुना, सघन कुंज अति छाजै ॥४६२॥
बसे जाय आनंद उमँग सौं, गइयाँ सुखद चरावैं ।
आयौ दुष्ट बछासुर जान्यौ, हरि चित बात धरावैं ॥४६३॥
करि बिचार छिन मैं हरि मारयौ, सो बछरा बन आज ।
ता पाछै जो बकासुर आयौ, घात कियौ ब्रजराज ॥४६४॥

ब्रह्मा का मोह

बच्छ चरावत, बेनु बजावत, गोप सखन के संग ।
सो देखन चतुरानन आये, हरि-लीला रस-रंग ॥४६५॥
छाकैं खात, खबावत ग्वालन, सुंदर जमुना-तीर ।
ग्वाल-मंडली मध्य बिराजत, हरि-हलधर दोउ बीर ॥४६६॥
गाय-गोप और बच्छ सबै, बिधि छिन ही मैं हरि लीनो ।
सबको रूप भये हरि आपुन, नैंक विलंब न कीनो ॥४६७॥
जबही गर्व गयौ बिरंचि कौ[1], अदभुत चरित्रहिं देख ।
परौ धाय हरि-पाँय जोरि कर, नाथ कृपाकर लेख[2] ॥४६८॥
अस्तुति करी बेद-बिधि करिकै, चतुरानन बहु भाँति ।
अदभुत चरित देखि माधौ कौ, हँसत सकल किलकाति ॥४६९॥
गये धाम अपने बिधि सुख सौं, हरि–आज्ञा सुख पाय ।
वर्ष दिवस लौ सर्व रूप हरि, ब्रजबासिन सुखदाय ॥४७०॥

विविध लीलाएँ

धेनु चरावन चले स्याम घन, ग्वाल–मंडली जोर ।
हलधर संग छाक भरि काँवर, करत कुलाहल सोर ॥४७१॥

---

१ चतुरानन (न), २ देख (रा) (न)

क्रीड़ा करत आप वृंदाबन, धेनु समूह नँचावत।
गोबर्द्धन पर बेनु बजावत, फूलन भेष सँवारत ।।४७२।।
कालीनाग नाथ हरि लाये, सुरभी--ग्वाल जिवाये।
कनक-कमल के बोझ सीस धरि, मथुरा कंस पठाये ।।४७३।।
दावानल कौं पान कियौ मुख, गोपन रक्षा कीनी।
वर्षा सुऋतु देख वृंदावन, क्रीड़ा की सुधि लीनीं ।।४७४।।
वेनु बजाय बिलास कियौ बन, धौरी धेनु बुलावत।
वरहापीड़ दाम गुंजा--मनि, अदभुत भेष बनावत ।।४७५।।
प्रात काल असनान करन कौं, जमुना गोपि सिधारीं।
लैकर चीर कदंब चढ़े हरि, बिनवत हैं ब्रजनारी ।।४७६।।
दै बरदान संग खेलन कौ, सरद रैन जब आई।
रचिकै रास सबनि सुख दीन्हौ, रजनी अधिक कराई ।।४७७।।
गोबर्द्धन धरि सब ब्रज राख्यौ, मघवा--मान मिटायौ।
नारायन प्रगटे सब जाने, जोई गर्ग मुनि गायौ ।।४७८।।
धेनुक और प्रलंभ संहारे, संखचूड़ बध कीन्हौ।
करिकै चरन परस प्रभु बन मै, व्याल अभै पद दीन्हौ ।।४७९।।
नानाविधि क्रीड़ा हरि कीन्ही, ब्रजबासिन सुख पायौ।
सबहिन यह माँग्यौ बिनती कर, हरि बैकुंठ दिखायौ ।।४८०।।
अभैदान दीनौ मघवा कौं, नंदराय कूँ राख्यौ।
बरुन-लोक में गये कृपा करि, बिबिध बचन उन भाख्यौ ।।४८१।।
जज्ञ करत ब्राह्मण मथुरा के, ओदन स्याम मँगायौ।
उन नहिं दियौ, नारि पै पठवे, तब उन सुनि सुख पायौ ।।४८२।।
षटरस थार सँवार साज सौं, सब ही हरि पै आई।
कियौ मनोरथ पूरन उनकौ, निरभै करि जु पठाई ।।४८३।।
व्यौमासुर--केसी सब मारे, अरु अरिष्ट बध कीनौ।
क्रीड़ा बहुत करी गोकुल मैं, भगतन कूं सुख दीनौं ।।४८४।।
नारद आय कह्यौ नृप सौं, यह कौन नींद तू सोवै।
तेरौ सत्रु प्रगट गोकुल मैं, गुप्त न जानत कोबै ।।४८५।।

यह सब देव प्रगट भये ब्रज मैं, जहाँ-तहाँ ठौरहिं ठौर ।
उग्रसेन–वसुदेव–देवकी, यादव जे सब और ।।४८६
नंद गोप, वृषभान-जसोदा, सबहिं गोप कुल जानौ ।
करौ उपाय बचौ जो चाहौ, मेरौ बचन प्रमानौ ।।४८७।
यह सुनि कंस, सबन कौ बंधन दीनौ है तेहि काल ।
श्रीवसुदेव–देवकी, निज पितु, बंधन दियौ बिसाल ।।४८८।
फिर नारद गोकुल ह्वै आये, हरि–चरनन सिर नाये ।
अस्तुति करी बहुत, नाना बिधि मधुरे बेनु बजाये ।।४८९।
हरि कछु इन उत्तर नहिं दीनौं, फिर गये अपने धाम ।
बल–मोहन सब सखा वृंद लै, क्रीड़त गोकुल ग्राम ।।४९०।

(२) मथुरा-लीला—

कंस का निमंत्रण

बोल अक्रूर अंस यह भाष्यौ, सुन सुफलक-सुत बात ।
राम-कृष्ण कौं लाओ मधुपुरी, बिलंब करौ जिन जात ।।४९१।
तब रथ बैठि चले सुफलक-सुत, संध्या गोकुल आये ।
पैंड़े मैं हरि–चरन–धूरि लैं, अपने अंग लगाये ।।४९२।
मिले नंद, बलदेव, रोहिनी, और जसोदा रानी ।
पूजा करि, पधराय सदन मैं, भोजन की बिधि ठानी ।।४९३।।
भोजन करि अक्रूर जो बैठे, सब वृत्तांत सुनाये ।
धनुष-जज्ञ कीन्हौ नृप जू नें, सब कूं बेगि बुलाये ।।४९४ ।।
चले महर ब्रजराज सौंज[1] लै, कौतुक देखन आज ।
राम-कृष्ण दोउ आगै लैकै, सकल घोष सिरताज ।।४९५।।
मारग मैं कालिंदी के तट, कीन्हौं जल–असनान ।
निज बैकुंठ दिखायौ जल मैं, दीन्हौ पूरन ज्ञान ।।४९६।।
करि बंदन हरि के चरनन कौ, पुन अक्रूर यह भाख्यौ ।
तुम जदुकुल प्रगटे पुरुषोत्तम, भक्तन कौ प्रन राख्यौ ।।४९७।।
मथुरा आय रहे उपबन मैं, नंदराय सब गोप ।
राम-कृष्ण के चरन-परस तैं, अधिक मधुपुरी ओप ।।४९८।।

---

१ साज (न) (बं)

गये नग्र देखन कौं मोहन, बलदाऊ लै साथ ।
पुर-कुलवधू झरोखा झाँकत, निरखि-निरखि मुसक्यात ।।४९९।।
पैंड़े[1] मैं इक रजक संहारचौ, सबहिं बसन हरि लीन्हे ।
बायक[2] मिल्यौ,सबहिं पहिराये, सबहिन कौं सुख दीन्हे ।।५००।।
आगै मिल्यौ सुदामा माली, फूल-माल पहिराई ।
निरभै दान दियौ हरि तिनकौं, अबिचल भक्ति दृढ़ाई ।।५०१।।
कुबिजा घसि चंदन लै आई, मारग देखन आई ।
हरि माँग्यौ उन लै जु समर्प्यौ, मन वांछित फल पाई ।।५०२।।
दियौ बरदान भवन आवन कौं, तहाँ तैं चले कन्हाई ।
मथुरा नग्र देखि मनमोहन, फूले हैं दोउ भाई ।।५०३।।
रीझत नारि कहत मथुरा की, आपुस मैं दै सैन ।
कोमल गात कौन कौ ढोटा, सुंदर राजिब-नैन ।।५०४।।
यह बालक सुकुमार सरस बपु, असुर प्रबल अति भारी ।
कैसे के वाकौं मारैगे, सोचत हैं पुर-नारी ।।५०५।।
उपबन आय कियौ हरि ब्यारू, नंदराय[3] सुख दीनौं ।
मधु-मेबा-पकबान-मिठाई, जो भायौ सो लीनौं ।।५०६।।
पौढ़े जाय दोउ सैंज्या पर, सोबत आई निंद ।
सुपने मैं मथुरा फिर देखी, जागे बाल-गोबिंद ।।५०७।।

मल्ल-युद्ध

भयौ प्रात नृप फेरि बुलायौ, धनुष जज्ञ कूं देखन ।
मल्ल जुद्ध नाना बिधि क्रीड़ा, राजद्वार कूं पेखन ।।५०८।।
गए ब्रजराज द्वार भूपति के, बहु उपहार दिवाये ।
तब नृप कह्यौ सकल गोपन सौं, भली करी तुम आये ।।५०९।।
बैठारे सब मंच, ओप सौं कौतुक देखन लागे ।
राम-कृष्ण संग ग्वाल-मंडली, नग्र देखन अनुरागे ।।५१०।।
तोरचौ धनुष टूक करि डारे, दोउन आयुध कीन्हे ।
तासौं मारि कर चूर पहरुआ, परम मोद रस-भीने ।।५११।।

१ मारग (न) (बं), २ बालक (बं), ३ जसुमति कूं (रा)

मद गजराज द्वार पर ठाड़ौ, हरि कह्यौ नैक बचाय।
उन नहिं मान्यौ, सनमुख आयौ, पकरयौ पूंछ फिराय ॥५१२।
दियौ पठाय स्याम निज पुर कौं, मावत सहि गजराज।
आगै चले सभा मैं पहुँचे, जहाँ नृप सकल समाज ॥५१३।
बड़े-बड़े राजा सब बैठे, और पुरबासी लोग।
अपने अपने भाव सु देखत, मिट्यौ सकल मन-सोग ॥५१४॥
मल्लन सबन मल्ल से देखे, नृपन लखे नृपराय।
जुबतिन सबै काम बपु देखे, भेंटन कूं ललचाय ॥५१५॥
गोपन सखा भाव करि देखे, दुष्ट नृपति कुल दंड।
पुत्र भाव बसुदेव-देवकी, देखे नित्य अखंड ॥५१६॥
विदुष जनन विराट प्रभु देखे, अति मन मैं सुख पायौ।
पूरन तत्व देखि जोगीजन, हित सौं ध्यान लगायौ ॥५१७॥
जदुकुल के कुल-दीपक प्रगटे, सब यादव सुखदाई।
कंस देखि निज काल आपनौ, बहुतहि क्रोध रिसाई ॥५१८॥
जब उन कह्यौ मल्ल-क्रीड़ा तुम, करत गोप के संग।
वृंदाबन में हम सुनियत हैं, क्रीड़त हौ बहुरंग ॥५१९॥
अब तुम कंस नृपति कूं दिखाऔ, मल्ल-युद्ध करि नीके।
कह्यौ चाणूर-मुष्टि सब मिल कें, जानत हौ सब जीके ॥५२०॥
तब हरि भिरे मल्ल-क्रीड़ा करि, बहु बिधि दाब दिखाये।
बरनन कियौ प्रथम संक्षेपन, अबहूं बरन न पाये ॥५२१॥
मुष्टक साथ लरे बल भाई, धरयौ बृहद बपु दोउ।
छिन ही मैं हरि तुरत संहारे, अति आनंद मन होउ ॥५२२॥
और मल्ल मारे सल-तोसल, बहुत गये सब भाज।
मल्ल-युद्ध हरि कर गोपन सौं, लखि फूले ब्रजराज ॥५२३॥

कंस-बध

तब नृप कंस बहुत बिललायौ, बार-बार रिसियाई।
बाँधौ नंद, हरौ गोपन-धन, कीन्हौं कपट-दुराई ॥५२४॥
फागुन वदि चौदस कौ सुभ दिन, और रविवार सुहायौ।
नखत उत्तरा आप बिचारयौ, काल कंस कौ आयौ ॥५२५॥

यह कहि कूद गये हरि ऊपर, जहाँ बैठे नृपराय।
हरि कौं देख खडग कर लीन्हौ, सन्मुख आयौ धाय ।।५२६।।
तब हरि केस पकरि अपने कर, धरनी मांझ पछारयौ।
ऊपर गिरे आप, तिहुँ पुर कौ बोझ सीस पर डारौ ।।५२७।।
कच गहि आप बहुत वह खैंच्यौ, हरि जमुना लौं आये।
करि बिस्राम सकल स्रम बीत्यौ, जब जमुना-जल न्हाये ।।५२८।।

उग्रसेन को राजगद्दी

बंधन छोर पिता-माता के, अस्तुति कर सिर नायौ।
तुम हम कूं पठयौ गोकुल मैं, यातैं लाड़ लड़ायौ ।।५२९।।
जसुमति मात और ब्रजपति जू, बहुतहि आनँद दीनौ।
यातैं टहल करन नहिं पायौ, कहत स्याम रँग-भीनौ ।।५३०।।
तब ब्रजराज महर पै आये, बल-मोहन दोउ भाई।
तुम्हरी कृपा कंस मैं मारौ, कहाँ लौं करौं बड़ाई ।।५३१।।
रोहिनी यह बोली जसुमति सौं, हम तुम्हरें सुख पायौ।
ज्यौं तुम्हरौ सुत त्यौं मेरौ सुत, बहुतहि लाड़ लड़ायौ ।।५३२।।
हिल-मिल चले सकल ब्रजबासी, नंदगाम फिरि आयौ।
सुबस बसी मथुरा ता दिन तैं, उग्रसेन बैठायौ ।।५३३।।
राम-कृष्ण घर आये जाने, पुरबासिन सुख पायौ।
मंगलचार भये घर-घर मैं, मोतिन चौक पुरायौ ।।५३४।।
तब हरि मात-पिता पै आये, दोउ भाइन सिर नायौ।
बंधन छोर बिनय बहु कीन्हे, तुम हम बिन दुख पायौ ।।५३५।।
फिर बसुदेव बसे अपने गृह, परम रुचिर सुख-धाम।
राम-कृष्ण कौं नित्य[1] लड़ावत, जानत नहिं दिन-जाम ।।५३६।।

गुरुकुल-शिक्षा

गर्ग बुलाय बेद-बिधि कीन्हीं,[2] जज्ञ-उपवीत धरायौ।
विद्या पढ़न काज गुरु-गृह दोउ, पुरी अबंति पठायौ[3] ।।५३७।।

---

१ लाड़ (न) (बं), २ कीन्हों (न) (बं), ३ शुभ उपवीत। (न) (बं) विद्या पढ़न राजविद्या को दोउ अवंतिका पठायौ (रा)

राजनीति मुनि बहुत पढ़ाई, गुरु–सेवा करवाये ।
सुरभी दुहत दोहनी मांगी, बाँह पसार देवाये ।।५३८।।
गुरु–दक्षिणा दैन जब लागे, गुरु–पतनी यह मांग्यौ ।
बालक बह्यौ सिंधु मैं हमरौ, सो नितप्रति चित लाग्यौ ।।५३९।।
यह सुनि स्याम-राम दोऊ मिलि, गये जलधि के तीर ।
पंचानन जु संख तहँ लीन्हौं, मारि असुर अति नीच ।।५४०।।
जमपुर जाय संख-धुनि कीन्हीं, जमराजा चलि आयौ ।
चरन धोय चरनोदक लीन्हौं, बालक दै सिर नायौ ।।५४१।।
लै बालक गुरु आगै धरिकै, राम-कृष्ण सुख-रासी ।
आज्ञा लै मधुपुरी सिधारे, परब्रह्म अबिनासी ।।५४२।।

मथुरा में आने पर ब्रज की स्मृति

क्रीड़ा करत बिबिध मथुरा मैं, अक्रूर-भवन सिधारे ।
अस्तुनि करी बहुत नाना बिधि, निरभै करि सिर धारे ।।५४३।।
कुबिजा के घर आप पधारे, सबै मनोरथ कीनौ ।
ऊधौ भक्त संग लैकै अति, आनँद भक्तन दीनौ ।।५४४।।
उद्धव भक्त बुलाय संग लै, हरि एकांत यह भाख्यौ ।
ब्रजबासी लोगन सौं मैं तौ, अंतर कछू न राख्यौ ।।५४५।।
सुरगुरु-सिष्य बुद्धि मैं उत्तम, जदुकुल कहत प्रमान ।
मंत्री–भृत्य–सखा, मो सेवक, यातैं कहत सुजान[१] ।।५४६।।
मोकूँ लाड़ लड़ायौ उन जो, कहाँ लगि करौं बड़ाई ।
सुनि ऊधौ तुम समुझत नाहिन, अब देखौगे जाई ।।५४७।।
बेगि जावो ब्रज मो आज्ञा तैं, ब्रजबासिन सुख देहौ ।
चरन-रेनु सिर धरि गोपिन की, तुमहुँ अभै–पद लैहौ ।।५४८।।
गोपिन सूँ बिनती करि कहियो, नित-प्रति मन सुधि करियो ।
बिरह-बिथा बाढ़ै जब तन मैं, तब-तब मोहि चित धरियो ।।५४९।।
पाती लिखी आप[२] कर मोहन, ब्रजबासी सब लोग ।
मात जसोदा, पिता नंद जू, बाढ़्यौ बिरह-बियोग ।।५५०।।

---

१ तूं जान (रा), २ व्यथा (रा)

धौरी धूमरि, कारी काजरि, मैन मजीठी गाय ।
ताकूँ बहुत राखियो नोकैं, उन पोष्यौ पै प्याय ।।५५१।।

उद्धव का ब्रज-गमन

बन मैं मित्र हमारौ एक है, हम ही सौ है रूप ।
कमल नैन घनस्याम मनोहर, सब गोधन कौ भूप ।।५५२।।
ताकौं पूजि बहुत सिर नइयो, अरु कीजो परनाम ।
उन हमरौ ब्रज सबहि बचायौ, सब बिधि पूरे काम ।।५५३।।
आज्ञा लै ऊधौ श्रीपति की, चले बेग नँदग्राम ।
पुष्कर[1] माल उतार हिरदै तैं, दीनीं सुंदर स्याम ।।५५४।।
पीतांबर अपनौ पहिरायौ, स्रुति कुंडल पहिराये ।
अपने रथ बैठाय प्रीति सौ, उद्धव ब्रज पधराये ।।५५५।।
दिनमनि अस्त भये गये गोकुल, नँदराय सौं भेटे ।
बल-मोहन दोउ देख माधुरी, परम बिरह दुख मेटे ।।५५६।।
मिले नंद, बलराम-कृष्ण दोउ हैं नीके, यह भाख्यौ ।
मारौ कस भली सब कीन्हीं, यादव कुल सब राख्यौ ।।५५७।।
पूजा करि भोजन करवायौ, उद्धव संत सरायौ ।
सोवत निसा नैक नहीं पाये, रामकृष्ण गुन गायौ ।।५५८।।
जसुदा बिकल बात पूछति है, नैनन नीर–प्रबाह ।
तन-मन मैं अति ही दुख बाढ़यौ, अति आतुर जनु दाह ।।५५९।।
बातैं करत सेस निसि आई, उद्धव गये सनान ।
सुमिरन कर फिर ब्रज मैं आये, गोपिन देखे आन ।।५६०।।
ऊधौ देखि सकल गोपिन नें, कीन्हौ मन अनुमान ।
रथ कूँ देखि बहुत भ्रम कीन्हौ, धौं आये फिर कान ।।५६१।।
तब एक सखी कह्यौ सुन री तू, सुफलक-सुत फिरि आयौ ।
प्रान गये लै, पिंड दैन कौं, देह लैन मन भायौ ।।५६२।।
इतने देख कृष्ण-अनुचर मुख, ऊधौ यह सब जानी ।
ऊधौ कियौ प्रनाम सबन कौं, बिनै किये मृदु बानी ।।५६३।।

---

१ पुराकर (रा)

उद्धव-गोपी-सवाद

भली करी तुम आये ऊधौ, लाये हरि की पाती ।
जा दिन तैं हरि गोकुल छांड़यौ, हम पर बिरह-बराती ॥५६४॥
इतने मांझ मधुप एक देख्यौ, आय चरन लपटायौ ।
ताकूं देखि कहत ऊधौ सौं, हरि गोकुल बिसरायौ ॥५६५॥
रे रे मधुप, कितब के बंधू ! चरन-परस जिन करिहौ ।
प्रिया अंक कुंकुम कर राते, ताही कौं अनुसरिहौ ॥५६६॥
अधर-सुधारस सकृत पान दै, कान्ह भये अति भोगी ।
बिजै सखा की सखी कहत हैं, तासौं रहत संयोगी ॥५६७॥
तीन लोक नारी कौं कहियत, जो दुर्लभ बलबीर ।
कमला हू नित पाँय पलोटत, हम तौ हैं आभीर ॥५६८॥
पहिलै ही इन हनी पूतना, बाँधे बलि कौं दान ।
सूपनखा—ताड़का संहारो, स्याम सहज यह बान ॥५६९॥
याकी कथा सुनी निज स्रवनन, बन बिहंग भये जोगी ।
माँगत भीख, फिरत घर-घर ही, सुजन कुटुंब बियोगी ॥५७०॥
फिर हरि आय जसोदा के गृह, रिंगन—लीला करि हैं ।
मांग्यौ चंद, आर जब कीन्हीं, उन बातन चित धरि हैं ॥५७१॥
बहुत दनुज संहार स्यामघन, ब्रज की रक्षा करिहैं ।
जमलार्जुन बिटप उपारे, काली कौ विष हरिहैं ॥५७२॥
बेनु बजाय रास बन कीन्हौ, अति आनँद दरसायौ ।
लीला कथत सहस-मुख, तौऊ अजहूँ पार न पायौ ॥५७३॥
महा प्रलय के मेघ पठाये, सुरपति कीन्हौ कोप ।
छिन ही मांझ गोवर्धन धारौ, राखि लिए सब गोप ॥५७४॥
ऐसे बहुत चरित्र कान्ह के, वरनि कहत नहिं आवै ।
ऊधौ तुम नैनन नहीं देख्यौ, तातें भेद न पावै ॥५७५॥
तब ऊधौ कह्यौ धन्य—धन्य तुम, धन्य—धन्य व्रज-नार ।
तुमरे सुबस सदा हरि खेलौ, ब्रज मैं करत बिहार ॥५७६॥
तुमरी चरन-कमल-रज कारन, तप कीन्हौ चतुरानन ।
रमा-सेष पुन किनहु न पायौ, सो देखियत बृंदाबन ॥५७७॥

गुल्म-लता मैं जन्म माँगि तव, बिधि सौं गोद पसारी।
ऊधौ कहत सदा मोहि दीजै, चरन-रेनु ब्रज-नारी ॥५७८॥
एक रूप ह्वै रहे वृंदाबन, गुल्म-लता कर बास।
बज्रनाभ उपदेस कियौ जिन, पूरन केलि प्रकास ॥५७६॥

उद्धव की वापिसी

एक रूप ऊधौ फिर आये, हरि चरनन सिर नायौ।
कह्यौ वृत्तांत गोप-बनितन कौ, बिरह न जात कहायौ ॥५८०॥
मोहि खोजत षटमास बीत गये, तवहुँ न आयौ अंत।
ब्रज-बनितन के नैन-प्रान बिच, तुमहीं स्याम बसंत[1] ॥५८१॥
छिन नहीं दूर स्याम तुम उनसौं, मैं निहचै[2] यह कीन्हौ।
तुमरौ रूप देखि, गोकुल मैं बाढ़्यौ नेह नबीनौ ॥५८२॥
तब हरि कह्यौ सुनौ ऊधौजू, ब्रजबासी तन मोर।
तिनकौं सपन कबहुँ नहीं छाँड़ौं, सत्य कहत हौं तोर ॥५८३॥
बृंदाबन मै धेनु चरावत, गोप सखन के संग।
बेनु बजावत, मोद बढ़ावत, क्रीड़ा कोटि अनंग ॥५८४॥
अरु गोपिन सौं अंग-संग करि, नित-प्रति करौं बिनोद।
दुष्ट कंस मारन यहाँ आयौ, सदा जसोदा गोद ॥५८५॥
कुज-कुंज मैं क्रीड़ा करि-करि, गोपिन कौं सुख दैहौं।
गोप सखन संग खेलत डोलौं, ब्रज तजि अंत न जैहौं ॥५८६॥
मारौं दुष्ट बहुत जो भूप पर[3], धर्म करौं बिस्तार।
बसुधा-भार उतारन कारन, जदुकुल लियौ अवतार ॥५८७॥
मित्र एक बन बसत हमारौ, सो नैनन भरि देख्यौ।
ताकौ पूजन नित प्रति करिहौं, सो तुम सुबुध बिसेख्यौ ॥५८८॥
नाना रतन-कंदरा, कबहूँ छिनहु मोहि न भुलावै[4]।
क्रीड़ा करौं नित्य कुंजन मैं, गोपिन कौं सुख भावै[5] ॥५८९॥

---

१ यह पंक्ति राग कल्पद्रुम में नहीं है। २ निश्चय (न) (बं),
मि पर (रा), ४ छिन नहिं मोहि भुलावै (न) (बं), ५ द्यावै (रा)
एकु आवे (गु)

ताही छिन अक्रूर बुलाये, बल-मोहन यह भाख्यौ ।
तुम अब बेगि जाओ हथनापुर, कमल-नैन जिय राख्यौ ।।५९०।।
तब अक्रूर बैठि हरि के रथ, हथनापुर जु सिधारे ।
कुंती मिली जुधिष्ठिर-अर्जुन, भीम-बिदुर उर धारे ।।५९१।।
गांधारी-दुर्योधन आदिक[1], भीष्म-करण सब भेंटे ।
बहुत दिना के ताप सबन के, सुफलक-सुत सब मेटे ।।५९२।।
तब यह कह्यौ नृपति सौं नीके, बहुत भाँति समुझायौ ।
तब नृप कह्यौ नहीं मेरौ बस, मोह प्रबल जिय छायौ ।।५९३।।
तब अक्रूर बिचार कियौ यह, हरि-इच्छा जिय मानी ।
कर परनाम गये मधुपुर[2] कौं, जहाँ स्याम सुखदानी ।।५९४।।
समाचार सबही जिय दीनौ, बल-मोहनहि सुनायौ ।
सुनि बसुदेव-देवकी दोऊ, बहुतहि दुख जिय पायौ ।।५९५।।

जरासंध द्वारा मथुरा पर चढ़ाई

अस्ति और प्राप्ति दोउ पत्नी, कंस राय की कहियत ।
जरासंध पै जाय पुकारीं, महा क्रोध मन दहियत[3] ।।५९६।।
तीन-बीस अछौहनी लै दल, जरासंध तहाँ आयौ ।
बल-मोहन छिन माँझ संहारे, करि बिन चमू पठायौ ।।५९७।।
सत्रह बार फेरि फिरि आयौ, हरि सब चमू संहारी ।
अब के फेर दुष्ट बनि आयौ, हरि कछु बात बिचारी ।।५९८।।
अंतरिक्ष तैं द्वै रथ उपजे, आयुध-तुरी[4] समेत ।
ता पर बैठ कृष्ण-संकरषन, जीते है सब खेत ।।५९९।।
नारद जाय जबन सूं भाख्यौ, राम-कृष्ण दोउ बीर ।
तोहि न गनत बसत हैं मथुरा, बड़े बली रनधीर ।।६००।।
यह सुनि जबन तुरत ही धायौ, जिय मैं अति अकुलाय ।
तीन कोटि भट जबन संग लै, मथुरा पहुँचौ जाय ।।६०१।।
सुनि बल-मोहन बैठि एकांत[5] मैं, कीनौ कछू बिचार ।
मागध मगध देस तैं आयौ, साजैं फौज अपार ।।६०२।।

---

१ और दुर्योधन और गंधारि (रा), २ मधुपुरी (रा), ३ दईत (रा); ४ तुरंग (न) (वं), ५ रहसि (न) (वं)

विस्वकर्मा कू आज्ञा दीनी, रची द्वारिका आय ।
निसि कौं सोये सब मथुरा मैं, जागे द्वारिका जाय ॥६०३॥
हलधर हल-मूसल कर लीन्हे, सबहीं मलेच्छ संहारे ।
मारि फौज सब ही मागध की, जरासंध उन्बारे ॥६०४॥

मुचकुंद की कथा

चले भाज दोउ भाई उहाँ तें, जहाँ सोवत[1] मुचकुंद ।
बसन उढ़ाइ[2], रहे छिपि आपुन, पूरन-परमानंद ॥६०५॥
मारी लात आय जब नृप कू, तब जाग्यौ भहराय ।
निकसी अग्नि नैन तें, तासौं भस्म भयौ तेहि दाय ॥६०६॥
इतने मांझ आपु हरि आये, दरसन दीन्हौं भूप ।
संख-चक्र, गदा-पद्म चतुर्भुज, सुंदर स्याम स्वरूप ॥६०७॥
तब पूछ्यौ तुम कौन रूप हौ, कौन देव अवतार ।
अबलौं कहुँ देखे नहीं मैंनें[3], तुम अतिसै सुकमार[4] ॥६०८॥
तब हरि कह्यौ जन्म मेरे बहु, सेष न पावै पार ।
भुव की रज, नभ के तारे सब, तितने हैं अवतार ॥६०९॥
अब कहियै द्वापर जुग सुन नृप, बासुदेव मम रूप ।
भूतल-भार उतारन आयौ, जदु-कुल सुखद सरूप ॥६१०॥
तब नृप अस्तुति बहुबिधि कीन्हीं, जन्म-कर्म-गुन गाय ।
तुमही ब्रह्म अखिल अविनासी, भक्तन जदा सहाय ॥६११॥
नव गुन, नवल रूप पुरुषोत्तम, जैं जदुकुल अवतार ।
जैं-जैं-जैं बैकुंठ महानिधि, कमलनैन सुखसार ॥६१२॥
बेद-पुरान रटत जस जाकौ, तऊ न पावत पार ।
मैं मुचकुंद नृपति कृतयुग कौ, सोवत भये जुग चार ॥६१३॥
अब मोकूं आज्ञा कछु दीजै, जैसै चरनन पाऊँ ।
सदा बसौं निज लोक निरंतर, जन्म-कर्म-गुन गाऊँ ॥६१४॥

---

१ जहाँ है नृप (रा), २ उठाय (रा), ३ नाहीं मै (न) (बं), ४ पूरन अति सुकुमार (रा) (न) अति हो सकुमार (बं)

क्षत्री जन्म बहुत अघ कीन्हे, तातैं मुक्ति न होय ।
विप्र-जन्म धरि मुक्त होयगौ, करि तप-साधन सोय ॥६१५॥
आज्ञा लैकै चल्यौ नृपति वह, उत्तर दिसा बिसाल ।
करि तप बिप्र-जन्म जब लीन्हौं, मिट्यौ जन्म-जंजाल ॥६१६॥

पर्वत-दाह

तहाँ तैं चले स्याम अरु हलधर, परवरषन गिरि आये ।
परबत बहुतन मन करि पूजा, यह बिनती करवाये ॥६१७॥
नित-प्रति मो सिर मघवा बरसत, लागत सीत अपार ।
अंग तपाय[1] महादुख मेटौ, माँगत यही मुरार ॥६१८॥
इतने माँझ मगध चलि आयौ, उन जानी यह बात ।
परबत माँझ गये दोउ भइया, उन देखे दृग जात ॥६१९॥
दीन्हीं अग्नि लगाय चहूँघा, उन जानी रिपु-हान ।
राम-कृष्ण दोउ कूद पधारे, पुरी द्वारका जान ॥६२०॥

३. द्वारका-लीला—

भयौ आनंद द्वारका मैं, सब घर-घर गीत गवाये ।
करि रिपु-हान समर सब जीत्यौ, राम-कृष्ण घर आये ॥६२१॥
एक समै नारद मुनि आये, नृपति भीष्म के गेह[2] ।
पूजा करी बहुत नाना विधि, नृपति जनायौ नेह ॥६२२॥
लखि रुकमिनी कह्यौ मुनि नारद, यह कमला अवतार ।
पूरन ब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, श्री बसुदेव-कुमार ॥६२३॥
उनके जोग्य यही कन्या है, सुनो देब महाराज ।
तब नृप कह्यौ करौं निश्चै यह, सुफल होय मम काज ॥६२४॥
तब नारद मुनि गये द्वारका, कृष्णचंद्र के पास ।
बिनती करी रुकमिनी की सब, सुनि हरि भये हुलास ॥६२५॥
करौ बेग, कछु विलंब न कीजै, नारद कही यह बात ।
स्रवन सुनत, कमलापति कौ जिय-तन पुलकित सब गात ॥६२६॥

---

१ अगनित पाप (गु) (न) (बं), २ गृह (रा),

सुनि नारद, मोहि नीद न आवै, करिहौं वेग उपाय ।
यह कहि चले आप हरि रथ चढ़ि, सोभा कही न जाय ॥६२७॥
देस-देस के नृपति जुरे सब, भीष्म नृपति के धाम ।
रुक्म कह्यौ सिसुपालहि दैहौ, नहीं कृष्ण सौं काम ॥६२८॥
इतने मांझ आपु हरि आये, सुनी नृपति सब बात ।
उपवन रहे जान जिय मैं यह, मन मैं अति अकुलात ॥६२९॥
पूजन करन चली देवी कौ, सखी वृंद सब संग ।
पूजा करि वोली यह कमला, लोक-लाज कृत भंग ॥६३०॥
अटल सक्ति[1], अविनास, अधिक वल, एक-अनादि-अनूप ।
आदि-अव्यक्त-अंबिका पूरन, अखिल लोक तब रूप ॥६३१॥
कृष्णचंद्र के चरन-कमल मैं, सदा रह्यो अनुराग ।
ये ही पति नित होहिं हमारे, जो पूरन मम भाग ॥६३२॥
तब उन कह्यौ, कृष्ण तुम्हरे पति ह्वै है, अचल सुहाग ।
चली महा वर पाय रुकमिनी, अति पूरन[2] अनुराग ॥६३३॥
तब हरि आय बैठ रथ नीके, आय मिले बड़ भाग ।
कर गहि बांह लई रथ नीके, अति आतुर चले भाग ॥६३४॥
मानौ नील मेघ के संगम[3], मिली दामिनी आय ।
चले तुरत हरि पुरी द्वारिका, संख-चक्र धरि धाय ॥६३५॥
दुष्ट नृपति कौ मान-मथन कर, चले द्वारका-नाथ ।
जरासंध-सिसुपाल आदि नृप, पाछै लागे साथ ॥६३६॥
रथ पाछै मिल सोभत यह विधि, सकल दुष्ट की खान ।
महा सिंह[4] निज भाग लेत ज्यौं, पाछै दौरैं स्वान ॥६३७॥
हलधर आय दुष्ट सब मारे, असुर नृपति की भीर ।
भाजि चले सिसुपाल-जरासंध, अति ब्यापत तन-पीर ॥६३८॥
आये नाथ द्वारका[5] नीकै, रच्यौ मांडवौ छाय ।
ब्याह-केलि बिधि रची सकल सुख, सौंज गनी नहीं जाय ॥६३९॥

---

१ सक्र (रा), २ पूरब (रा), ३ संग में (न) (बं), ४ बिपुल (रा), ५ माधौपुर (रा)

ब्रह्मा–रुद्र देव तहाँ आये, सुक–नारद–सनकादि ।
दरसन करि मंगल सुख के सब, मेटी बिरह जो आदि ॥६४०॥
चैत्र मास पून्यौ कौ सुभ दिन, सुभ नक्षत्र, सुभ बार ।
ब्याह लई हरि देव रुकमिनी, बाढ़चौ सुख जो अपार ॥६४१॥

श्री कृष्ण के अन्य विवाह

एक सत्राजित जादौ कहियै, सूरज देव उपास ।
दीन्हीं मनि आदित स्यमंतक, कोटिक सूर प्रकास ॥६४२॥
भार-भार नित कनक देत है, नृपति सुनी यह बात ।
तब उन माँगी, इन नहिं दीन्हीं, बाढ्यौ बैर-अघात ॥६४३॥
एक दिवस मृगया कौं निकस्यौ, कंठ महामनि लाय ।
तब उन मारि सिंह गहि लीन्हौं, रीछ मिल्यौ एक ताय ॥६४४॥
जांबुवान महा बली उजागर, सिंह मारि मनि लीन्हीं ।
परवत गुहा पैंठ[1], अपने घर जाय, सुता कौं दीन्हीं ॥६४५॥
चरचा परी बहुत द्वारापति, कृष्णचंद्र की बात ।
तब हरि गये सैल-कंदर मैं, अति कोमल, मृदु-गात ॥६४६॥
दिन अट्ठाइस जुद्ध कियौ जब[2], रीछ भयौ बल-भंग ।
तब पग परचौ बहुत अस्तुति कर, जानि राम पद संग ॥६४७॥
तब हरि कह्यौ भक्त तू मेरौ, तोसौं करि संग्राम ।
कीन्हें सुद्ध तत्व सब तन के, पूरन कीन्हें काम ॥६४८॥
जांबुवती अरपी कन्या भरि, मनि राखी समुहाय ।
करि हरि-ध्यान, गयौ हरि-पुर कौं, जहाँ-जोगेस्वर जाय ॥६४९॥
लै स्यमंत मनि, जांबुवती सह[3], आये द्वारका नाथ ।
अति आनंद कुलाहल घर-घर, फूले अँग न समात ॥६५०॥
आस्वनि सुदि नौमी कौ सुभ दिन, हरि आये निज धाम ।
तौलौं घर–घरप्रति, दुर्गा कौ पूजन कियौ सब गाम ॥६५१॥

---

१ बैठ (बं), २ जुद्ध भारी भयौ (रा), ३ लै जांबुवत स्यमंतक मनि (रा)

सत्राजित अपनी तनया कूं, दीन्हीं त्रिभुवन राय।
सतभामा जु नाम तेहि कहियत, सोभा कही न जाय ।।६५२।।
कीन्हौ व्याह परम आनंद सौ, सतभामा सुख-रास ।
द्वारावती विराजत नित प्रति, आनंद करत बिलास ।।६५३।।
इंद्रप्रस्थ हरि गये कृपा करि, पांडव-कुल कौं लार।
तहाँ कालिंद्री बन मैं व्याही, अति सुंदरि सुकुमार ।।६५४।।
मित्रा-वृंदा एक नृपति-नंदिनी, ताकौ माधव ब्याये ।
सात बैल नाथन के कारन, आप अयोध्या आये ।।६५५।।
सत्या ब्याहि बहुत सुख कीन्हौ, मथ्यौ नृपति कौ मान ।
आये फेर द्वारिका मोहन, मंगल-केलि-निधान ।।६५६।।
भद्रा व्याहि आप जब आये, द्वारावती अनंद ।
तैसै ही लछमना बिवाही, पूरन-परमानंद ।।६५७।।
नरकासुर कौं मारि स्याम-घन, सोरह सहस्र त्रिय लाये।
एकहि लगन सबन कर पकरयौ, महूरत एक बियाये[1] ।।६५८।।

श्रीकृष्ण का गार्हस्थ जीवन

यह सुनि नारद अचरज पायौ, ब्रह्मलोक तैं धाये ।
कृष्णचंद्र के चरन परसि कर, बीना मधुर बजाये ।।६५९।।
तब हरि रीझ कह्यौ नारद सौं, कहौ कहाँ तैं आये।
तब उन कह्यौ, दरसन कूँ आयौ, बहुत रूप धरि ब्याये ।।६६०।।
यह कौतुक देखन के कारन मैं आयौ, जो देखावो ।
रूप अनंत, आदि-अबिनासी, दरसन प्रेम बढ़ावो ।।६६१।।
तब हरि कह्यौ जाओ घर-घरप्रति, देखौगे सब ठौर ।
मैं ही हौं सब थल परिपूरन, मो बिन नाँहिन और ।।६६२।।
तब मुनि चले देख घर-घरप्रति, परम केलि सुख पायौ ।
नाना क्रीड़ा करत निरंतर, घर-घर रूप दिखायौ ।।६६३।।
कहुँ क्रीड़त, कहुँ दाम बनावत, कहुँ करत शृंगार ।
कहुँ बालकन खिलावत माधव, खेलत परम उदार ।।६६४।।

---

१ एक मुहूर्त बिवाये (न) (बं)

कहुँ चौपर खेलत जुवतिन सँग, पाँच-साल उच्चार।
कहुँ मृगया कू चले अस्व चढ़ि, श्री बसुदेव-कुमार ॥६६५॥
कहुँ कर लैकै सस्त्र सँवारत, कहुँ कछु करत बिचार।
कहुँ कछु बात कहत सबहिन सौं, कहुँ धुनि वेद उचार ॥६६६॥
कहुँ मिलि जाय करत बिप्रन सँग, अति आनंद मुरार।
नाना दान देत हय-गज-भुअ, ऐसे परम उदार ॥६६७॥
कहुँ गोदान करत कहुँ देखे, कहुँ कछु सुनत पुरान।
कहुँ निर्तत सब देख बार-बधु, कहुँ गँधरब गुन-गान ॥६६८॥
कहुँ जप करत सनातन निज बपु, ब्रह्म करत कहुँ ध्यान।
कहुँ उपदेस, कहूँ जैबे कौ, कहूँ दृढ़ावत ज्ञान ॥६६९॥
कहुँ भोजन नाना रुचि माँगत,[1] षटरस के पकवान।
आरोगत ब्रजराज सांवरौ, कहूँ करत जल-पान ॥६७०॥
कहुँ जागत दरसन दियौ मुनि कूँ, करि पूजा-परनाम।
संध्या करत कहूँ त्रिभुवन-पति, स्नान करत कोऊ धाम ॥६७१॥
कहुँ पौढ़े कमला के सँग मैं, परम रहस्य एकंत।
कहुँ ब्रत करत, कहूँ निगमन कौ ज्ञान, कर्म कौ अंत ॥६७२॥
कहुँ श्राद्ध करत पितरन कौ, तरपन कर बहु भाँति।
कहुँ बिप्रन कौं देत दक्षिना, कहुँ भोजन की पाँति ॥६७३॥
कहूँ सुगंध लगावत लैकै, कहूँ अस्व-शृंगार।
कहुँ गजरथ, कहुँ बाजिरथनि सजि, डोलत है गृह-द्वार ॥६७४॥
कहुँ ऊधौ सौं व्रज-सुख क्रीड़ा, परम प्रेम उच्चार।
कहुँ पांडव की कथा चलावत, चिंता करत अपार ॥६७५॥
कहुँ मिल बिप्र कहत सबहिन सौं, बालक करन सगाई।
कहुँ सुत-ब्याह, कहूँ कन्या कौ देत दायजौ राई ॥६७६॥
कहुँ गजराज-वाजि शृंगारे, ता पर चढ़े जु आप।
सँग बलभद्र चमू सब सँग लै, चले असुर दल काँप ॥६७७॥
कहूँ हस्तिनापुर देखन कौं, मन मैं करत बिचार।
कहूँ अरघ देत सूरज कौं, कहुँ पूजत त्रिपुरार ॥६७८॥

१ मानत (रा)

कहुँ एक दुर्गा देवि जानि कै, जोरि बिप्र निज धाम ।
करत होम बहु भाँति बेद-धुनि, सब विधि पूरन काम ।।३७६।।
प्रथम पुत्र कौ ब्याह जानिकै, पूजन कहूँ गनेस ।
कहूँ ऋषिन के चरन धोयकै, सिर पर धरत नरेस ।।६८०।।
कहूँ ब्याह की केलि परम सुख, निरखत मुनि सचु पायौ ।
सेस सहस्त्र मुख पार न पावैं, कछु एक 'सूर' जु गायौ[1] ।।६८१।।
फिर मुनि आय भवन कमला के, चरन कमल सिर नायौ ।
मैं सब ठौर फिरचौ तुम देखे, कतहूँ पार न पायौ ।।६८२।।
जित-तित देखौ तुम परिपूरन, आदि–अनंत–अखंड ।
लीला प्रगट देव पुरुषोत्तम, व्यापक कोटि ब्रह्मंड ।।६८३।।
सिब-विरंचि-सनकादि महामुनि, सेस-सुरेस-दिनेस ।
इन सबहिन मिलि पार न पायौ, द्वारावती-नरेस ।।६८४।।
तुमरे चरन-कमल की महिमा, जानत हैं त्रिपुरारि ।
प्रगट गंग पावन चरनन तैं, ताहि रहत सिर धारि ।।६८५।।
पुन गौतम-घरनी जानत है, नावक-सिबरी जान ।
ऊधौ-बिदुर-युधिष्ठिर-अर्जुन, अरु भीषम सुरज्ञान ।।६८६।।
हनूमान अरु भक्त विभीषन, चरन-कमल रज माँगी ।
सोई कृपा करो करुनानिधि, माँगत हौं अनुरागी ।।६८७।।
यह कहिकै मुनि लोक सिधारे, बीन बजाय रिझाय ।
ब्रह्मलोक पहुँचे छिन ही मैं, हरि आज्ञा कौं पाय ।।६८८।।

प्रद्युम्न और अनिरुद्ध

पहिलौ पुत्र रुकमिनी जायौ, प्रद्युमन नाम धरायौ ।
कामदेव प्रगटे हरि के गृह, पहिलै रुद्र जरायौ ।।६८९।।
नारद जाय कह्यौ संबर सौं, तव रिपु बपु धरि आयौ ।
बेग उपाय करौ मारन कौ, प्रगट द्वारिका जायौ ।।६९०।।
तब संबर भयभीत, द्वारका गयो तुरत तेहि काल ।
हरि कौ चक्र देख रखवारी, ब्याकुल भयौ बेहाल ।।६९१।।

---

१ सुरज मायै (रा),

तब नारद मुनि आय्र चक्र सौं, बात करन ठहराये[1] ।
इतने माँझ पुत्र लै भाज्यौ, निधि मैं जाय दुराये ॥६६२॥
एक मीन नें भक्ष कियौ, तौउ[2] हरि रखबारी कीनीं ।
सोई मच्छ पकरि मोधुक नें, जाय असुर कौं दीनी ॥६६३॥
तब उन कह्यौ, पाकसाला मैं अबहीं यह पहुँचाओ ।
चीरचौ उदर, पुत्र तब निकस्यौ, उन जान्यौ मम नाओ ॥६६४॥
नारद कह्यौ यही तव पति है, ताकू बेग बढ़ाय ।
जौलौ बड़ौ होय तौलौं यह, असुरन मतिहिं लेखाय ॥६६५॥
सेवा कीनीं बड़े भये जब, समरथ बिपुल उदार ।
महाबली बलराम-कृष्ण सुत, कीन्हौ असुर संहार ॥६६६॥
मारि असुर कौ, आय द्वारका, कृष्ण-चरन सिर नायौ ।
भीतर गये, नयं रुकमिन कौं, सबहिन कंठ लगायौ ॥६६७॥
वर अरु बधू आये जब जाने, रुकमिनि करत बधाई ।
रति अरु काम प्रगट ता दिनतें, कबि मिलि कीरति गाई ॥६६८॥
यहि बिधि केलि करत द्वारावति, पूरन परमानंद ।
महिमा-सिंधु कहाँ लगि बरनै, 'सूरज' कबि मतिमंद ॥६६९॥
पुनि अनिरुद्ध भेद नारद के, चित्ररेखा हरि लीन्हौं ।
चार वर्ष अरु चार मास लौं, ऊषा कौं सुख दीन्हौं ॥७००॥
तब हरि जाय संग हलधर लै, सब जादौं दल जोर ।
सबै भुजा करि दूर असुर की, च्यार हाथ दिये छोर ॥७०१॥
आये रुद्र पक्ष करि ताकौ, जुद्ध करन हरि साथ ।
छिन मैं जीत बधू-सुत लैकै, आये द्वारका नाथ ॥७०२॥

अन्य बासुदेव

पुन एक दिवस सुधर्मा बैठे, जादौं सभा अपार ।
उग्रसेन–बसुदेव–सात्विकी अरु अक्रूर उदार ॥७०३॥
इतने मांझ दूत एक आयौ, सबहिंन कहि समझायौ ।
नृप बासुदेव करी यह आज्ञा, मोकौ बेगि पठायौ ॥७०४॥
बासुदेव यह कहत बेद मै, प्रगट ब्रह्म अवतार ।
सो तौ मैं ही प्रगट भयौ भुअ, यहि बिधि बढ़यौ[3] अपार ॥७०५॥

१ ठहरायौ (बं), २ तब (बं), ३ बक्यौ (रा)

छिन मैं जाय तुरत हरि मारचौ, दीन्हीं मुक्ति कृपाल ।
फेर द्वारका तुरत पधारे, गरुड़ चढ़े गोपाल ॥७०६॥
एक दुष्ट नें बहुत कियौ तप, सो रिझये त्रिपुरार ।
तब सिव नें उन कृत्या दीन्ही, बाढ़्यौ क्रोध अपार ॥७०७॥
कृत्या चली जहाँ द्वारावति, हरि जानिय यह बात ।
आज्ञा करी चक्र कौं माधौ, छिन कृत्या कर घात ॥७०८॥
कासी जाय, जराय छिनक मैं, गये द्वारका फेर ।
अति आनंद परम सुख सौं सब, दिन बीतत रस टेर ॥७०९॥

कुरुक्षेत्र-स्नान और ब्रजवासियों से भेंट

पुन कुरुक्षेत्र गये जादौ मिल, कियौ तीर्थ अस्नान ।
जज्ञ-होम कर, पितर-देवता-विप्रन कौं बहु दान ॥७१०॥
सूरज-ग्रहन नृपन बहु जान्यौ, आय जुरी सब भीर ।
दरसन भयौ सबन कौं हरि कौ, मिट्यौ ताप तन पीर ॥७११॥
भीष्म-द्रौन अरु करन-युधिष्ठिर, भीष्मार्जुन-सहदेब ।
कुंती, नकुल और गंधारी, कृपी-बिदुर सब देब[1] ॥७१२॥
दुरयोधन सब भ्रात संग लै, धृतराष्ट्रहिं लै आयौ[2] ।
नारद-गौतम-बालमीक मुनि, हरि-दरसन हित धायौ ॥७१३॥
भारद्वाज-मरीच-अंगिरा, अत्रै मुनी अनंत ।
पुलह-पुलस्त-अगस्त-कश्यप पुन, अरु सनकादिक संत ॥७१४॥
हरि कौ दरसन करि सुख पायौ, पूजा बहु बिधि कीन्हीं ।
अति आनंद भए तन-मन मैं, सौंज[3] बहुत बिधि दीन्हीं ॥७१५॥
ब्रजबासी सब सखा संग के, जसुमति अरु ब्रजराज ।
दरसन पाय बहुत सुख पायौ, सुफल भये सब काज ॥७१६
जसुमति मात उछंग लगाये, बल--मोहन कूं आय ।
बाल-भाव जिय मैं सुधि आई, अस्तन चले चुचाय ॥७१७॥

---

१ सहदेव (गु) (बं), २ धृतराष्ट्र तहाँ आयो (रा), ३ सोच (रा) आशिष (गु)

गोपिन छबि कान्ह की सोभा, बहुतहि मन सुख पायौ ।
सघन निकुंज सुरत संगम मिलि, मोहन कंठ लगायौ ॥७१८॥
रुकमिनि कहत कमल लोचन सौं, श्रीराधा हमैं दिखाओ ।
जाकी नित्य प्रसंसा तुम करि, हम सबहिन कूँ सुनाओ ॥७१९॥
तब वृषभानु-सुता पग[1] धारी, रानिन मंडल मांझ ।
मनौं सरस इंदीवर फूले, ता मधि फूली सांझ ॥७२०॥
देख तेज वृषभान-सुता कौ, सबै भई छबि-हीन ।
अति आनंद-मोद मन मान्यौ, हमहिं कृतारथ कीन ॥७२१॥
तब हरि कह्यौ मोहिं राधा बिन, पल-छिन कछु न सोहाय ।
सुनो रुकमिनी, कथा घोष की मोपै कहिय न जाय ॥७२२॥
एक दिना बन मैं इन मोकूँ, अपनी सुधा पिवायौ ।
ताके बल गिरि गोवर्धन लै, अपने हाथ उठायौ ॥७२३॥
अरु काली–धेनुक–दावानल, प्रगट पूतना आई ।
इनकी कृपा सकल बिधनन कूँ, छिन मैं दिये नसाई ॥७२४॥
भाँति-भाँति करि मोहि लड़ायौ, सघन कुंज मैं जाय ।
ताकी कथा कहौं कहा तुमसौं, मोपै कहिय न आय ॥७२५॥
रास-केलि करि क्रीड़ा कीन्हीं, होरी खेल खिलायौ ।
मटुकि छुड़ाय लियौ,दधि बरसत, तौउ कछु मन नहिं आयौ ॥७२६
रतन जटित परिजंक द्वारका, पौढ़त हौं सुख धाम ।
तौऊ इनकौ ध्यान करत ही, बीतत है सब जाम ॥७२७॥
इन बिन मोहिं कछू नहिं भावै, नंदराय की आन ।
सुनौ रुकमिनी, लोचन मैं ए बसी रहैं[2] मम प्रान ॥७२८॥
जागत, सोवत और बन डोलत, भोजन करत बिहार ।
ध्यान करत नख-सिख इनही कौ, बसि द्वारका मँझार ॥७२९॥
तब मिल रंग बहुत भांतिन सौं, कीन्हे बिपुल बिहार ।
व्रज जन चले सकल गोकुल कौं, दीन्हे दान अपार ॥७३०॥

---

१ पाव (रा), २ बेई है (रा)

चले द्वारका जदुकुल सब मिलि, भयौ कुलाहल भार ।
पहुँचे आय द्वारका सनमुख, घर-घर मंगलचार ॥७३१॥

युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ

कियौ विचार जज्ञ कौ राजा, राजसूय जिय जानि ।
कृष्णचंद्र कौं बेगि बुलाओ, सकल संग पटरानि ॥७३२॥
आये इंद्रप्रस्थ सब जदुकुल, महा महोत्सव मान ।
जुरे भूप बहु सकल देस के, हरि दरसन जिय जान ॥७३३॥
च्यारौं भ्रात चारि दिसि जीती, भारत कही बखान ।
ठौर-ठौर के नृप सब आये, लै उपहार प्रमान ॥७३४॥
बड़ौ जज्ञ राजसूय रचायौ, जुरे विप्र बहु भारी ।
महा भाग्य राजा जु जुधिष्ठिर, जहाँ माधव अधिकारी ॥७३५॥

शिशुपाल-बध

सबहिन कह्यौ प्रथम पूजा अब, कहौ कौन की कीजै ।
सब मैं बड़ौ कौन भूपनि[1] है, जाहि अर्चना दीजै ॥७३६॥
तब सहदेव कह्यौ सबहिन सौं, सुनौ नृपति मन लाय[2] ।
पूजा जोग प्रगट पुरुषोत्तम, कृष्णचंद्र जदुराय ॥७३७॥
सबहिन कह्यौ साधु यह बानी, सुर-मुनि-मनुज सराई ।
एक सिसुपाल दुष्ट नृप कहियै, सुनतहि उठ्यौ रिसाई ॥७३८॥
गोकुल नंद अहीर गोप गृह, पै पियकै यह जीयौ ।
दधि जु चुराय खाय, वृंदाबन चरित विषम बहु कीयौ ॥७३९॥
मातुल मारि बहुत अघ कीन्हें, कहाँलौं करौं बड़ाई ।
वृंदाबन-गोवर्द्धन कुजन, लूटीं नारि पराई ॥७४०॥
बन-बन गाय चरावत डोलत, कांधे कमरिया राजै ।
लकुटी हाथ, गरैं गुँजमाला, अधर मुरलिका बाजै ॥७४१॥
ऐसे ख्याल करे इन बहुबिधि, कहत जु आवै लाज ।
बेद बिदित सुरकाज बिगारे, बहकाये ब्रजराज ॥७४२॥

---

१ सबमें बड़ो कौन महीपति, जेहि लै उपहार जेहि दीजै (रा),
२ (रा)

जज्ञ करत बिप्रन मथुरा मैं, जाँचै भीख न दीन्हीं।
अरपन कियौ नहीं देवन कौं, पहिलै इन मति कीन्हीं ॥७४३।
माखन चोरि-चोरि गोपिन कौ, दूध जु दधि लै खायौ।
जमुना न्हात, गोप-कन्यन कौ लै पट कदम चढायौ ॥७४४।
काली हरि की आज्ञा कूँ लै, जमुना माँझ बसायौ।
ताहि निकास दियौ छिन ही मैं, नैक संकोच न आयौ ॥७४५॥
एक पूतना पय-पान करावन, प्रेम सहित चलि आई।
ताहि लगाय हिरदै लपटानी, प्रान जो लियौ चुराई ॥७४६॥
जन्म होत इन मात-तात कौं, तब ही बंधन दीन्हौ।
जादौं जात भाज जित-तित कौं, अनत जाय सुख कीन्हौ ॥७४७॥
बेन बजाय रास इन कीन्हौ, मुग्ध[1] गोप की नारी।
परनारी कौ दोष कछू चित, नाहिन[2] कीन्ह बिचारी ॥७४८॥
दूध-दही के भाजन चाटे, नैकहु लाज न आई।
माखन चोरि, फोरि मथनी कौं, पीवत छाछ पराई ॥७४९॥
छाक खाय झूठन ग्वालन की, कछु मन मैं नहिं मान्यौ।
पर दारा के संग जाय निसि, कुबजा सौं सुख मान्यौ ॥७५०॥
बहुत प्रीति करि गोपिन जाने, बहु बिधि लाड़ लड़ायौ।
ताकौ जतन कछू नहि मान्यौ, मथुरा मैं चलि आयौ ॥७५१॥
जरासंध इन बहुत बारही, करि संग्राम पलायौ।
हमरे डर करि दोऊ भाई, नग्र समुद्र बसायौ ॥७५२॥
कालजमन के आगै भाज्यौ, जाय गुफा गहि लीन्ही।
लात मारि मुचकुंद जगायौ, नैक दया नहिं कीन्ही ॥७५३॥
वातैं बहुत याहि की लंपट, सभा मांझ नहिं कहियै।
जिय मैं समुझि आपुने सन्मुख, मुख तै चुप करि रहियै ॥७५४॥
अतिसै क्रोध भये पांडव-सुत, और नृपति हरिदास।
राखे बरज सबन कूँ माधौ, नैक न भये उदास ॥७५५॥

---

१ मधुप (बं), २ इन नहिं (न) (बं)

अति ही भई अवज्ञा जानी, चक्र सुदर्सन मान्यौ ।
करि निज भाव एक सत्रुन मैं, छिनक दुष्ट सिर भान्यौ ॥७५६॥
परम कृपाल दयाल देवकी–नंदन पावन नाम ।
दीनीं मुक्ति दया करिकै तब, दियौ लोक निज धाम ॥७५७॥
जै-जैकार भयौ बसुधा पर, राय युधिष्ठिर हरषे ।
अमृत स्नान कराय बेद विधि, कनक-कुसुम सिर बरसे ॥७५८॥

दुर्योधन का भ्रम

दीन्हीं सभा बनाय पांडु की, मय मायागत अंत ।
ताकूँ देख भ्रमे दुर्योधन, महा मोह मतिमंत ॥७५९॥
जल मैं थल-मति, थल मैं जल-मति, भई नृपति कौ जान ।
अंधपुत्र लखि हँसे पबनसुत, सुन जिय मैं रिस मान ॥७६०॥
गयौ भवन अकुलाय बहुत जिय, क्रोधवंत अभिमानी ।
ताही दिन तैं पांडु-पुत्र सौं, बैर विषम गति ठानी ॥७६१॥

द्यूत-क्रीड़ा और द्रोपदी का अपमान

सभा रची चौपर क्रीड़ा करि, कपट कियौ अति भारी ।
जीत जुधिष्ठिर भई सब जानी, तौउ मन मैं अधिकारी ॥७६२॥
जुबती धरी जान दुष्टन नैं, जब द्रोपदी बुलाई ।
हरि कौ सुमिरन करत, पंथ मैं दुस्सासन गहि लाई ॥७६३॥
अहो नाथ, ब्रजनाथ, नाथ निज, जदुकुल के निज नाथ ।
गोकुलनाथ, नाथ सब जन के, मो पति तुम्हरे हाथ ॥७६४॥
ज्यौं गजराज बचायौ जल मैं, नैक बिलंब न कीन्हीं ।
अपनौ भक्त बचावन कारन, विष विपया[1] करि दीन्हीं ॥७६५॥
सिबरी-गीध और पसु-पच्छी, सबकी रक्षा कीनी ।
अब तौ सहाय करौ तुम मेरी, हौ पामर मतिहीनी ॥७६६॥
चौपर खेलत भवन आपुने, हरि द्वारका मँझार ।
पांसे डार परम आतुर सो, कीन्हौ अनत उचार ॥७६७॥

---

१ अमृत (न)(बं

चीर बढ़ाय दियौ बहु तेहि छिन, ऐंचत पार न पायौ ।
भीष्म-द्रौन और करन-जुधिष्ठिर, सब बिस्मय मन लायौ ।।७६८
रह्यौ दुष्ट पचि हार दुसासन, कछू न कला चलाई ।
बैठौ आय सभा मैं पाछै, बार-बार पछिताई ।।७६९।
फिर द्रौपदी भवन मैं आई, श्री हरि लज्जा राखी[1] ।
बेद–पुरान–तंत्र–भारत मैं, कही बहुत बिधि भाखी ।।७७०।

श्री कृष्ण का दूत-कार्य

पुन बनबास दियौ पांडव-सुत, हरि द्वारका यह जानी ।
अक्षै पात्र दिवायौ रवि पै, बड़े भक्त सुखदानी ।।७७१।
दुरबासा सापन कूँ आये, तिनकी कछु न चलाई ।
अक्षै कियौ कमल-दल लोचन, भक्तन भये सहाई ।।७७२।
पाँडव कुल के सहाय भये हरि, जहाँ-तहाँ संगहिं डोले ।
दुर्योधन सूँ कह्यौ दूत ह्वै, भक्त-पक्ष दृढ़ बोले ।।७७३।।
पाँच गाँव पांडव कौं दीजै, सुनौ नृपति मम बात ।
और राज तुम सबहीं करियै, निपट जगत बिख्यात ।।७७४।।
प्राची और प्रतीचि–उदीची, और अपाची मान ।
इंद्रप्रस्थ बीच मैं दीजै, और राज तुम जान ।।७७५।।
सुनिकै क्रोध भयौ दुरयोधन, सब पांडव कौ राज ।
तुमरौ कुल सब नास होयगौ, कहि जो चले ब्रजराज ।।७७६।।
बहुत दुःख दीन्हौं पांडव कौं, अबलौं मैं सहि लीन्हौं ।
लाख भवन बैठार दुष्ट नें, भोजन मैं विष दीन्हौ ।।७७७।।
बन-बन फिरे अर्क-तूलन ज्यौं, बास बिराटहिं कीन्हौं ।
अंतहि गुप्त रहे ता पर मैं, भेद काहु नहि दीन्हौं ।।७७८।।

महाभरत-युद्ध और भीष्म-प्रतिज्ञा

जुरे नृपति अच्छौनि अठारह, भयौ जुद्ध अति भारी ।
रथ हाँकत गोबिंद अर्जुन कौ, दीन्ह सस्त्र सब डारी ।।७७९।।

---

१ हरि प्रतिज्ञा राखि (रा)

करी प्रतिज्ञा कह्यो भीष्म मुख, पुन पुन देब मनाऊँ ।
जो तुम्हरे कर सर न गहाऊँ, गंगा-सुत न कहाऊँ ॥७८०॥
चढ़े प्रवल दल दोऊ ओर के, बिच अर्जुन रथ ठाढ़ौ ।
इत पारथ, गगेय बली उत, जुरौ जुद्ध अति गाढ़ौ ॥७८१॥
दस दिन लरे बली गंगा-सुत, स्याम प्रतिज्ञा जानी ।
सत्य बचन हरि कियौ भक्त कौ, निगम झूँठ कर बानी ॥७८२॥
धरि रथचक्र स्याम निज कर मैं, जबहिं भीष्म पर डारौ ।
सीतल भई चक्र की ज्वाला, जब सिर तिलक निहारौ ॥७८३॥
धन्य-धन्य कहि परे आय पग, गुन-निधान गंगेव ।
तब हरि कह्यौ बिपुल वल तुम्हरौ, जीत लिए सब देव ॥७८४॥
तब उन कह्यौ, चरन अपने मैं राखौ, निस-दिन ध्यान ।
मोरि प्रतिज्ञा तुम राखी है, मेटि बेद की कान ॥७८५॥
डारि सस्त्र सर-सिज्या सोये, हरि-चरनन चित लायौ ।
उत्तर दिसि रवि जान, देह तजि, महा[१] परम पद पायौ ॥७८६॥
नृपति जुधिष्ठिर राज-तिलक दै, मारि दुष्ट की भीर ।
द्रौन, करन अरु सल्य मुक्त करि, मेटी जग की पीर ॥७८७॥

द्वारका की अन्य लीलाएँ

गोबिंद आय द्वारका निज गृह, अति आनंद बढ़ायौ ।
घर-घर मंगल महा कुलाहल, जदुकुल होत बधायौ ॥७८८॥
सालब नृप सेये पंचानन[२], तापै यह बर पायौ ।
दियौ बनाय नगर गोपुर मैं, काहु न जात लिबायौ ॥७८९॥
आय द्वारका सोर कियौ उन, हरि हस्तिनापुर जाने ।
प्रद्युमन लरे सप्तदस दो दिन, रंच हार नहिं माने ॥७९०॥
हरि अपसगुन जानि हस्तिनापुर, बैठ तुरत रथ धाये ।
बहुत देस कौं पाबन करि-करि, सांझ द्वारका आये ॥७९१॥
कीन्हीं जुद्ध आय सालब सौं, उन बहु माया कीन्हीं ।
जल मैं थल, थल मैं जल देख्यौ, स्याम दूर कर दीन्हीं ॥७९२॥

---

१ वहां ('बं), २ शाल्व नृपति तप किय पंचानन (न) (बं)

माया दूर करी नँदनंदन, चक्र दियौ सिर डार ।
छन ही मांझ दुष्ट संहारौ, भुव कौ भार उतार ॥७९३॥
जै-जैकार करत देवांगन, बरषत कुसुम अपार ।
कियौ प्रबेस द्वारका मोहन, घर-घर मंगलचार ॥७९४॥
राजसूय करवाय स्याम घन, जरासध मरवायौ ।
दंतबक्र महिपाल महाबल, बिदुरथ प्रान नसायौ ॥७९५॥
बालक मृतक देबकी माँगे, सो छिन मैं हरि लाये ।
दीन्हौं दरस भक्त नृप बलि कौं, तन के ताप नसाये ॥७९६॥
बालक आय देवकी जाने, अस्तन-पान कराये ।
हरि कौं सेष पान करिकै, वे हरि के पद पहुँचाये ॥७९७॥
एक दिना जदुनाथ संग, सब बिप्र मडली लीन्हे ।
मिथिला चले[1] जनक राजा पै, दरस कृपा करि दीन्हे ॥७९८॥
तहाँ वसत श्रुतदेव महामुनि, सुनि दरसन कूँ धायौ ।
तब उन कह्यौ चलौ मेरे गृह, हरि स्वीकार करायौ ॥७९९॥
नृपति कह्यौ मेरे घर चलियै, करौ कृतारथ मोय ।
ताहूकैं हरि आपु पधारे, प्रगट धरे बपु दोय ॥८००॥
देख चरित्र बिनोद लाल के, बिस्मित भये द्विजराय ।
अद्भुत केलि कृपा करि कीन्हीं, द्विज कौ ज्ञान बढ़ाय ॥८०१॥
बहुत दिवस लौं कृपा करी हरि, जनकराय सुख दीन्हौं ।
बहुरि पधारे पुरी द्वारका, जदुकुल मैं सुख कीन्हौं ॥८०२॥
बहिन सुभद्रा ब्याह बिचारयौ, हरि अर्जुन चित धारयौ ।
श्री बलदेव कह्यौ, दुर्योधन नीकौ दुलह बिचारयौ ॥८०३॥
हरि कौ भेद पायकै अर्जुन, धरि त्रिदंडि कौ रूप ।
भिक्षा कौं निज भवन बुलायौ, श्री बलभद्र अनूप ॥८०४॥
नैनन मिलत लई कर गहिकै, फागुन चले पराय ।
सुन बलदेव क्रोध अति बाढ़यौ, कृष्ण शांत कियौ आय ॥८०५॥
फेरि बुलाय ब्याह करि दीन्हौ, बिजै बहुत सुख पायौ ।
फिर आये हस्तिनापुर पारथ, मघवाप्रस्त बसायौ ॥८०६॥

---

१ पधारे (रा)

सुदामा-लीला

एक दिना एक बिप्र भक्तमति, हरि कौ सखा कहावै ।
अति दारिद्र दुखित जब जाने, तब पतनी समुझावै ॥८०७॥
जाहु नाह ! तुम पुरी द्वारका, कृष्णचंद्र के पास ।
जिनके दरस-परस-करुना तैं, दुख-दरिद्र कौ नास ॥८०८॥
तदुल माँग–जाँच कै[1] लाई, सो दीन्हौ उपहार ।
फाटे बसन बाँधि कै द्विजवर, अति दुरबल तन हार ॥८०९॥
आये देव द्वारका हरि पै, जाय चरन सिर नायौ ।
हरि भेंटे भ्राता की नाईं, पूजा बिबिध करायौ ॥ ८१०
अपने मुनि आसन बैठारे, हँसि-हँसि बूझत बात ।
कहो विप्र हम गये अवंतिका, गुरु के सदन विख्यात ॥८११॥
वन मैं बहु बर्षा जब आई, ताकौं सुधि करि लैहौं ।
गुरु आये आपुन कौं बोलन, मंत्र थकायौ मैं हौं ॥८१२॥
ता दिन की यह कथा तुम्हारी, बिसरत नाँहिन मोहिं ।
किधौं कौन कारज कौ आये, सो पूछत हौं तोहिं ॥८१३॥
कछु हमकौं उपहार पढ़ायौ, भाभी तुम्हरे साथ ।
फाटे बसन, सकुच अति लागत, काढ़त नाहिन हाथ ॥८१४॥
हरि अपने कर छोरि बसन कौं, तंदुल लीन्हें हाथ ।
मुट्ठी एक प्रथम जब लीन्हें, खान लये जदुनाथ ॥८१५॥
दुतिय मुष्टिका लैन लगे जब, कमला गहि लियौ हात ।
दियौ दुजहि मघवा कौ बैभव, बाढ्यौ जस बिख्यात ॥८१६॥
भोर भये उठि चले भवन कौं, हरि कछुऐ ना दीनौं ।
ताकौ हरप-सोक कछु मन मैं, मुनि छिन हू नहिं कीनौं ॥८१७॥
भली भई हरि-दरसन पायौ, तन कौ ताप नसायौ ।
दुरबल विप्र कुचील सुदामा, ताकौं कंठ लगायौ ॥८१८॥
धन्य-धन्य प्रभु की प्रभुताई, मोपै बरनि न जाई ।
सेस सहस्त्र मुख पार न पावत, निगम नेति कहि गाई ॥८१९॥

---

१ माँग दोंचिके (बं)

ऐसै कहत गये अपने पुर, सबहिं बिलक्षण देख्यौ ।
मनिमै महल, फटकि गोपुर लखि, कनक-भूमि अबरेख्यौ ॥८२०॥
पतनी मिली परम सुख पायौ, कृष्णचंद्र आराधे ।
मघवा कौ सुख भयौ सुदामहिं, तऊ कछुक नहि बाँधे ॥८२१॥

राजा नृग की कथा

नौ लख धेनु दईं राजा नृग, बहुतहिं दान दिवायौ ।
कृष्ण-भक्ति बिन बिप्र-स्राप तैं, गिरगिट की गति पायौ ॥८२२॥
ताकौ चरन परसि कै माधौ, दुःखित स्राप छुटायौ ।
कृपा करी जदुनाथ महानिधि, निज बैकुंठ पठायौ ॥८२३॥

बलदेव का ब्रज-आगमन

बलदाऊ ब्रजमंडल आये, ब्रजबासिन कौं भेटे ।
बहुत दिनन के बिरह-ताप-दुख, मिलत छिनक मैं मेंटे ॥८२४॥
सघन निकुंज सुभग[1] वृन्दावन, कीन्हें बिबिध बिहार ।
गोपिन संग रासरस खेले, बाढ़्यौ स्रम सुकुमार ॥८२५॥
कालिंदी कौं निकट बुलायौ, जल-क्रीड़ा के काज ।
लियौ आकरषि एक छिन मैं, हरि अति समरथ जदुराज ॥८२६॥
बिबिध भाँति क्रीड़ा हरि कीन्ही, ब्रजबासिन सुख दीनौं ।
द्वादस बन अवलोकि मधुपुरी, तीरथ कौं चित कीनौं ॥८२७॥

बलदेव की तीर्थ-यात्रा

सुभ कुरुक्षेत्र,[2] अयोध्या-मिथिला, प्राग त्रिबेनी न्हाये ।
पुन सतरुद्र और चँद्रभागा, गंगा ब्यास न्हवाये ॥८२८॥
निमषारन आये बलजू जब, सकल बिप्र सिर नायौ ।
करी अवज्ञा कथा कहत दुज, अपने लोक पठायौ ॥८२९॥
तब दुज कह्यौ कथा कहिकै यह, हमकौं सुख उपजायौ ।
हम कापै अब कथा सुनैंगे, बलदाऊ समुझायौ ॥८३०॥
इनकौ पुत्र होय जो बालक, ताकौं बेगि बैठावो ।
धर्‌यौ हाथ सिर, दीन्ही बिद्या, नित-प्रति कथा सुनावो ॥८३१॥

---

१ विपिन (रा), २ शकर क्षेत्र (रा)

पुन दुज बिनती करि यह भाख्यौ, असुर एक इहाँ आवै ।
जज्ञ करत मैं जान परत वह, आय रुधिर बर्षावै[1] ॥८३२
यह सुनि कै बलदेव गुसाईं, हल-मूसल लियौ हात ।
लियौ पकर हल नभमंडल तै, कर मूसल सौं घात[2] ॥८३३॥
जै–जैकार भयौ सुर-लोकन, देव दुंदुभी बाजै ।
अस्तुति करत वहुत पूजा दुज, अति आनंद समाजै ॥८३४॥
बिनती करी बहुत बिप्रन नैं, राम बिप्र तुम मारयौ ।
तीरथ न्हाय सुद्ध तनकौं करि, हरि दुज बचन बिचारयौ ॥८३५॥
बरस दिबस मैं अठसठ तीरथ, न्हाय तुरत घर आये ।
आय प्रभास बिप्र बहुजन कौं, बहुतहि दान देवाये ॥८३६॥
पुनि मिथिला एक दिबस पधारे, हरि–बलदेव गोसाईं ।
गदा युद्ध दुरयोधन सिखयौ, नाना भेद बताई ॥८३७॥
पुनि द्वारका पधारे निजपुर, अति आनंद सुख बाढ्यौ ।
प्रगट ब्रह्म नित बसत द्वारका, कलह भूमि कौ काढ्यौ ॥८३८॥

द्वारका की अन्य लीलाएँ

दस-दस पुत्र, एक-एक कन्या, हरि सबकैं उपजाई ।
सुत के सुत नाती-पनतो[3] की, महिमा कहिय न जाई ॥८३९॥
बडे बली प्रद्युम्न कहावत, कृष्ण-अंस अवतार ।
तिन सब जग जीत्यौं तिहुँ लोकन[4], वाढ्यौ सुजस अपार,॥८४०॥
अस्वमेध करवाय युधिष्ठिर, कुल कौ दोप मिटायौ ।
करि दिगविजै, बिजै कौ जग मैं भक्त पक्ष करवायौ ॥८४१॥
नाना बिधि कीन्हीं हरि क्रीड़ा, जदुकुल स्राप दिवायौ ।
जो जा लोक छोड़िकै आयौ, ताकूँ तहाँ पहुँचायौ ॥८४२॥
ऊधौ कूँ कहि ज्ञान आपुनौ, निगमन–तत्व बतायौ ।
कही कथा दत्तात्रै मुनि की, गुरु चौबीस करायौ ॥८४३॥

---

१ यज्ञ करत में जान परवनी, आय रुधिर बहावे (रा), २ गात (रा),
नी रा ४ तीन कालो रा

कहि आचार, भक्ति-विधि भाषी, हंस-धर्म प्रगटायौ ।
कही बिभूत–सिद्ध–साधनता, आस्रम चार कहायौ ।।८४४।
सांख्य तत्व गीता हरि कीन्हीं, गुन के भेद करायौ ।
ऐल गीत, पुन भिक्षु गीत कहि, पूजा विधि दरसायौ ।।८४५।।
सदा बसत हरि पुरी द्वारका, बहु विधि भोग विलासी ।
आदि-अनंत-अघट्ट-अनूपम, है अबिगति-अबिनासी ।।८४६।।

भूमा पर कृपा

एक दिना एक बिप्र द्वारका, बसत सुखद निज धाम ।
बेदरूप, तपरूप, महामुनि, कृष्ण बिप्र यह नाम ।।८४७।।
बालक दस जु भये बाके जब, भूमा लिये मँगाय ।
चित मै यह अनुरक्त विचारत, हरि-दरसन की चाय ।।८४८।।
दस सुत गये[1] जानिकै ब्राह्मण, करि पुकार हरि पास ।
तब हरि कह्यौ देव की गति यह, करत काल जग–नास ।।८४९।।
तब अर्जुन यह कह्यौ मत्त ह्वै, नृप नाहिन भुव-भार ।
मैं अर्जुन गांडिव धनु जाकौ, काल सौं लरौं छिन मार ।।८५०।।
जब सुत भयौ कह्यौ ब्राह्मण नें, अर्जुन गये गृह ताह ।
सर[2]-पिंजर रोप्यौ चहुँ दिसि तैं, जहाँ पवन नहि जाह ।।८५१।।
तब सुत गयौ देह कौं लैकै, दरसन भयौ न ताय ।
अति ही क्रोध भयौ ब्राह्मण कौ, बहुत बक्यौ बिलखाय ।।८५२।।
तब अर्जुन ढूँढ़न कौं निकसे, तीन लोक फिरि आयौ ।
कहूँ न पायौ सुत ब्राह्मण के, तब मन मैं अकुलायौ ।।८५३।।
कियौ बिचार प्रवेस अगिन कौं, हरि आये समुझायौ ।
लै निज संग चले पच्छिम कौं, लोकालोक सुहायौ ।।८५४।।
कनक-भूमि उद्यान[3] देब के, देखे परम सुहाये ।
बहुत निबिड़तम देखि चक्रधरि, धरचौ हाथ समुझाये ।।८५५।।
महाकाल पुर तुरत पधारे, हरि भूमा के पास ।
तुल्य अगिन वर अगिन समानी, भूमा तेज प्रकास ।।८५६।।

---

१ भयो (न) (बं), २ पर (रा), ३ अरु धाम (न) (बं)

कृष्ण-तेज कौं देख सकल सुर, तन-मन भयौ हुलास ।
अति ही मंद तेज भूमा कौ, हरि के तेज प्रकास ।।८५७।
अति आनंद परसपर बाढ़यौ, जब उन बिनती कीनीं ।
भली भई भुव-भार उतारयौ, मेरी हू सुधि लीनीं ।।८५८।
लै दस पुत्र द्वारका आये, दीन्हें बिप्र बुलाय ।
कीन्हौ दुःख दूरि अर्जुन कौ, महिमा प्रगट दिखाय ।।८५९।
कीनीं केलि बहुत बल-मोहन, भुव कौ भार उतारयौ ।
प्रगट ब्रह्म राजत द्वारावति, बेद-पुरान बिचारयौ ।।८६०।

श्री कृष्ण द्वारा ब्रज-बास की स्मृति

एक दिना रुकमनि सौं माधौ, करत बात सुखदाई ।
सुन रुकमिनी राधिका बिन, मोहि पल-छिन कल्प बिहाई ।।८६१।
कनक भूमि खचि रचित द्वारका, कुंजन की छबि नाँही ।
गोवर्धन परबत के ऊपर, बोलत मोर सुहाहीं ।।८६२।
जमुना तीर भीर खग-मृग की, मोहि नित-प्रति सुधि आवै ।
बृंदाविपिन राधिका-मंदिर, नित-प्रति लाड़ लड़ावै ।।८६३।
रात-दिबस रस श्रवत सुधा-सै, कामधेनु दरसाई ।
लूट-लूट दधि खात सखन सँग, तैसौ स्वाद न पाई ।।८६४।
षटरस[1] भोजन नाना बिधि के, करत महल के माँहीं ।
छाके खात ग्वालमंडल में, वैसौ तौ सुख नाँहीं ।।८६५।
जन्मभूमि देखन के कारन, मेरौ मन ललचावै ।
धौरी धेनु बुलावन कारन, मधुरे बेनु बजावै ।।८६६।
रास-बिलास बिबिध मैं कीन्हें, संग राधिका लीन्हें ।
कीने केलि बिबिध गोपिन सौं, सबहिन कौं सुख दीन्हें ।।८६७।

षट दरसन (रा),

राधा-कृष्ण का नित्य विहार—

ब्रज की निकुंज लीला

बल-मोहन फिर ब्रजहिं पधारे, ऊधौ कौं संग लीने।
दीनौं बास चरन-रज गोपिन, गुल्म-लता रस भीने ॥८६८॥
सदा बिलास करत गोकुल मैं, धन-धन जसुमति मात।
ज्यौं दीपक तैं दीपक कीन्हौ, भये द्वारका-नाथ ॥८६९॥
नितप्रति मंगल रहत महर कैं, नितप्रति बजत वधाई।
नितप्रति मंगल कलस धरावत, नितप्रति बेद पढ़ाई ॥८७०॥
श्री वृषभान राय के आँगन, नितप्रति बजत बधाई।
नितप्रति मिल मुनिराज मंडली, मंगल घोष कराई ॥८७१॥
बाल-केलि क्रीड़त ब्रज-आँगन, जसुमति कौं सुख दीनौं।
तरुन रूप धरि गोपिन के हित, सब कौ चित हरि लीनौं ॥८७२॥
चंद्राबली गोप की कन्या, चंद्रभाग–गृह जाई।
भई किसोर, स्याम नें देखी, अदभुत प्रीति बढ़ाई ॥८७३॥
तब ललिता पूछ्यौ नीके कर, केहि बिधि स्याम मिलाई।
अब न परत मोकूं कल छन हूं[1], जिय मैं अति अकुलाई ॥८७४॥
तब उन कह्यौ सीस गोरस लै, बेचन के मिस आओ।
गोवर्धन पर गोबिंद खेलत, निरखि परम सुख पाओ ॥८७५॥
करि सिंगार चली चद्राबलि, नख-सिख भूषन साजै।
ज्यौं करनी गजराज बिलोकत, ढूँढत है अति गाजै ॥८७६॥
गोबर्धन के सिखर चारु पर, सखा-बृंद संग लीन्हें।
गोपिन देखि टेर हरि कीन्हौ, दान लैन मन कीन्हें ॥८७७॥
राखौ घेरि सकल जुबतिन कौं, सखा बृंद सौं भाष्यौ।
आपु जाय पकरयौ कोमल कर, दधि अमृत रस चाख्यौ ॥८७८॥
देहौ दधि कौ दान नागरी, गहर न लाओ चित्त।
तुमरे काज नित्य हम ठाढ़े, अरपैं अपनौ बित्त ॥८७९॥

---

१ अब न परत मोपैं न रह्यौ छिन (रा)

वृंदाबन मैं धेनु चरावत, माँगत गोरस-दान।
नाना खेल सखन सँग खेलत, तुम पायौ नृप-थान[1] ॥८८०॥
अरी ग्वालि! महा मत्त बचन की, बोलत बचन विचार।
अचल राज गोबर्धन मेरौ, वृंदाबिपन मँझार ॥८८१॥
जो तुम राजा आप कहावत, वृंदाबन की ठौर।
लूट-लूट दधि खात सबन कौ, सब चोरन के मौर ॥८८२॥
चोरी करत भक्त के चित की, और दधि और नबनीत।
सखा वृंद सब मीत हमारे, वड़े राज रजनीत ॥८८३॥
जो तुम राजनीत सब जानत, बहुत बनावत बात।
जब तुम जन्म लियौ मथुरा में, आये आधी रात ॥८८४॥
सुनरी ग्वालि गँवारि!, बात कौं बोलत बिना बिचार।
कमल-कोष मै बसत मधुप ज्यौं, त्यौं भुव रहै मुरार ॥८८५॥
दूध–दही के माते[2], बनावत बातैं बहुत गोपाल।
गढ़ि-गढ़ि छोलत कहा, रावरे लूटत हौ ब्रजवाल ॥८८६॥
जो प्रभु देह धरैं नहिं भुव पर, दीन अधम को तारै।
बढे असुर पहुँमी पर खल अति, तिन्हैं तुरत को मारै ॥८८७॥
जोग जुक्त कर ध्यान लगावत, जोग सिद्ध कर ज्ञान।
नेति-नेति कहि निगम बतावत, ताहि होत निरमान ॥८८८॥
जोग, सांख्य अरु ज्ञान भामिनी, माया हृदय बिनास।
प्रेम भक्त मेरौ जस गावै, तेहि घट मेरौ बास ॥८८९॥
मुख ऊपर कहाँ कहूँ लाय कै, अन उत्तर की खोर।
जब जसुमति नें ऊखल बाँधे, हमहीं दीन्हें छोर ॥८९०॥
बालक निपट अयान ग्वालिनी, कछु सुधि जानि न जाय।
लै कर चीर कदम पर बैठ्यौ, सबहिन हा-हा खाय ॥८९१॥
बहुत भये हौ ढीठ साँवरे, मुख पर गारी देत।
तुमरे डर हम डरपत नाहिन, कहा कँपावत बेत ॥८९२॥

---

१ थान (न) (बं) पीयूश पीऊँ पय पान (मु), २ मात (न) (बं)

स्याम सखन सा कह्यो टेर दै, घेरौ सब अब जाय।
वहुत ढीठ यह भई ग्वालिनी, मटुकी लेहु छुड़ाय ।।८९३।
जाय स्याम कंकन कर लीनौं, गहि हारावलि तोर।
लूट-लूट दधि खात साँबरौ, जहाँ साकरी खोर ।।८९४।
इद्रा, बृंदा और राधिका, चंद्राबलि सुकुमारि।
विमल-विमल दधि खात सबन कौ, करत बहुत मनुहारि ।।८९५।।
गहि बहियाँ लै चले स्याम घन, सघन कुंज के द्वार।
पहिले सखी सबै रचि राखी, कुसुमनि सेज सँवार ।।८९६।।
नाना केलि सखिन सँग विहरत, नागर नंद कुमार।
आलिगन–चुंबन–परिरंभन, भेंटत भरि अँकबार ।।८९७।
श्रम जल विदु इंदु-आनन पर, राजत अति सुकुमार।
मानौं[1] विविध भाव मिलि विलसत, मगन सिंधु रस-सार ।।८९८।
कुंज-रंध्र अवलोकि सहचरी, अपनौ तन-मन वारैं।
निरख-निरख दंपति नेत्रन सुख, तोर–तोर त्रन डारैं ।।८९९।।
यह अबलोकि देब-गंधर्व-मुनि, बरषत कुसुम अपार।
जै–जै करत, बार नीराजन, बोलत जै–जैकार ।।९००।।
गोबर्द्धन की सघन कंदरा, कीनौ रैन-निवास।
भोर भये निजधाम चले दोउ, अति आनंद बिलास ।।९०१।।
नंदधाम हरि वहुरि पधारे, पौढ़ रहे निज सैन।
जसुमति मात जगावत भोरहिं, जागे अंबुज नैन ।।९०२।।
करी मुखारी और कलेऊ, कीनौ जल-असनान।
करि सिंगार चले दोउ भइया, खेलन कौं सुखदान ।।९०३।।
कहुँ खेलत मिल ग्वाल–मंडली, आँख-मीचनी खेल।
चढ़ा-चढ़ी कौ खेल सखन मैं, खेलत हैं रस-रेल ।।९०४।।
कहूँ आमरू डार बिटप की, खेलत सखन मँझार।
कूद-कूद धरनी सब धावत, दाँव देत किलकार ।।९०५।।
भोजन समै जान, जसुमति नैं लीने दुहुन बुलाय।
बैठ आय जसुमति कि गोद मैं, आनँद उर न समाय ।।९०६।।

---

१ नाना (रा),

बहु विधि के पकवान बनाये, परसति जसुमति माय ।
आरोगत बल-मोहन दोऊ, सुख देखत ब्रजराय ॥६०७॥
कबहूँ कबर खात मिरचन की, लागी दसन टकोर ।
भाज चले, तब गहे रोहिनी, लाई बहुत निहोर ॥६०८॥
भोजन करि नाना विधि दोऊ, लीनौ मठा सलोनौ ।
अँचबन करि ब्रजराज पधारे, बल-मोहन मुख मोनौ ॥६०९॥
बीरी खाय चले खेलन कौं, बीच मिलीं ब्रज-नार ।
लै चलीं पकर बाँह राधा पै, सघन कुंज के द्वार ॥६१०॥

मान लीला

राधा सौं मिलि अति सुख उपज्यौ, उन पूछी एक बात ।
कहौ जु आज रैन कहाँ सोये, हम देखे तुम जात ॥६११॥
तब हरि कह्यौ सुनो मृगनैनी, गाय गई एक दौर ।
ताकौं लैन गयौ गोबर्धन, सोय रह्यौ तेहि ठौर ॥६१२॥
कद-मूल-फल दीने गोधन, सो निसि कूँ मैं खायौ ।
भोर भयौ उठि तेरैं आयौ, चरन--कमल परसायौ ॥६१३॥
निज प्रतिबिंब बिलोकि राधिका, हरि-नख-मंडल माँह ।
द्वुतीय रूप देखि अबला कौ, मान बढ़यौ तन छाँह ॥६१४॥
चली रिसाय कुज मृगनैनी, जहाँ अलि करत गुंजार ।
बैठी जाय एकांत भवन मैं, जहाँ मान-गृह चार ॥६१५॥
नद-कुँवर बिरहन राधा के, बिरह भये भरिपूर ।
बैठे जाय एकांत कुंज मैं, सखा किये सब दूर ॥६१६॥
ललिता बोल कही मृदु बानी, कृष्ण कमल--दल नैन ।
बिन राधा मोहिं कल न परत है, कहत मधुर मृदु बैन ॥६१७॥
बेग जाय परि पाँय राधिका, बिनती करो सुनाय ।
दरसन देउ सकल दुख मेटौ, तुम बिन रह्यौ न जाय ॥६१८॥
तुम बिन खान-पान नहिं भावत, गोचारन-शृंगार ।
रैन नींद नहिं परत निरंतर, संभाषन--व्यौहार ॥६१९॥
करि दंडौत चली ललिता जू, गई राधिका--गेह ।
पाँयन पर-पर, बहुत बिनै कर, सुफल करन कौं नेह ॥६२०॥

बेग चलौ वृषभान-नंदनी, बोलत नंद-कुमार ।
तुम बिन पल-छिन कल [1]न परत है, भोजन-सुख-व्यौहार ॥६२१
नव निकुंज मैं मिलौ स्याम सूँ, भेंटौ भरि अँकवार ।
कुसुम-सेज पर करो केलि, प्रिय गिरधर परम उदार ॥६२२॥
तो बिन पियहिं कछू नहिं भावै, तो सौं पिय आधीन ।
तो बिन स्याम रहत है ऐसै, जैसै जल बिन मीन ॥६२३॥
कहा सुभाव परौ सखि तेरौ, यह बिनवत हौं तोह ।
मान करत गिरबरधर पिय सौं, मानत नाँहिन मोह ॥६२४॥
करि शृंगार सकल ब्रज-सुंदरि, नीलांबर तन साज ।
रैन अँधेरो, कछू न दीसत, नूपुर ध्वनि जिन बाज ॥६२५॥
कुवलै-दल कुसुमन-सेज्या रचि, पंथ निहारत तोर ।
सुपन, जाग अरु सैन सुमृति तुव, बचन सत्य है मोर ॥६२६॥
सित अरु पीत जूथिका बैनी, गूँथौ बिबिध बनाय ।
रचौ भाल निज तिलक मनोहर, अंजन नैन सुहाय ॥६२७॥
तू छबि-सिंधु बिहर, ब्रज-नायक छुद्र नदी नहिं भावै ।
जब तें नाम सुन्यौ स्रवनन तुव, रैन नींद नहिं आवै ॥६२८॥
हा-हा हरि राधा-राधा रटत, जपत मंत्र दुरदाम[2] ।
बिरह-बिराग महाजोगी ज्यौं, बीतत हैं सब जाम ॥६२९॥
कबहूँ किसलै-सेज सँवारत, तेरे ही हित लाल ।
कबहूँ अपने हाथ सँवारत, गूँथत कुसुमन-माल ॥६३०॥
तुव बिन वर सकेत-सदन बन, देखत लगत उदास ।
बिरह-अगिन चहुँ दिस मैं धावत, फूले दिखत पलास ॥६३१॥
सारस-हंस-मोर-पारावत, बोलत अमृत-बान ।
बैठ रहे दुर सदन सघन बन, धुनि नहिं सुनियत कान ॥६३२
कालिंद्री तट, बिमल कदम तर, करत बदन तुव ध्यान ।
सुहृदय सखा त्याग मनमोहन, करत मधुर तुव गान ॥६३३॥
गुंजत स्रवनन मधुप सुनत हैं, तुव स्रुति की सुधि आवै ।
कंचन बरन जान तेरौ बपु, पीतांबर पहिरावै ॥६३४॥

१ रह्यौ (रा), २ हरि राधा-राधा रटै जापतां, मंत्र धरी दाम (प्र)

सुनत कोकिला-सब्द मधुर धुनि, कमल-नैन अकुलात ।
तेरे बोल करत सुधि जिय मैं, बिरह मगन ह्वै जात ॥६३५॥
तुव नासा-पुट गत[1] मुक्ताफल, अधर-बिंब उनमान ।
गुंजाफल सब के सिर धारत, प्रगटी मीन[2] प्रमान ॥६३६॥

(अथ दृष्टकूट कथन)

सिंधु-सुता सुत, ता रिपु गमनी, सुन मेरी तू बात ।
काम पिता[3] बाहन भख कौ तन, क्यौं न धरत निज गात ॥६३७॥
अलि बाहन पति बाहन रिपु की, तपत बढ़ी तन भारी ।
सैल-सुता सुत ता सुत अंगना, सो तैं तबै बिसारी ॥६३८॥
भृंग जूथ[4] चतुरानन तनया, ब्रह्मनाद सुर संग ।
जल-सुत बाहन सो जन धारत, बिषम लगत बिष अंग ॥६३९॥
चतुरानन सुत ता सुत वा सुत, उदित होन अब आयौ ।
मन्मथ मात तात सुत अथयौ, सो तौ वृथा गमायौ ॥६४०॥
पंकज उर पंकज जिन केरे, तेरौ अटल सुहाग ।
सुरपति बाहन ता सुत सिर पर, माँग भरौ अनुराग ॥६४१॥
कमल पुत्र ता सुत कर राजत, सो हरि निज कर लीन्हे ।
सप्त सुरन उपजाय बजावत, रटन राधिका कीन्हे ॥६४२॥
सुत प्रह्लाद तासु सुत ता पित, भ्राता वृथा गँवायौ[5] ।
संज्ञा सुत बपु सद्दस बसन तन, सो तन लागत छायौ ॥६४३॥
सारंग ऊपर सारंग राजत, सारंग सब्द सुनावै ।
सारंग देख सुनै मृगनैनी, सारंग सुख दरसावै ॥६४४॥
सारंग रिपु की बदन ओट दै, कहा बैठी है मौन ।
ब्रह्म-सुता सारंग के धोखे, करत सकल ब्रज गौन[6] ॥६४५॥
सारंग सुता देख सारंग कौं, तेरौ अटल सुहाग ।
सारंग पति ता पति ता बाहन, कीरत रट अनुराग ॥६४६॥

---

१ ग्राह्य (गु), २ मीत (रा), ३ पती (गु), ४ युक्त (गु)
ौ (रा), ६ गान (गु)

दधि-सुत वाहन सुभग नासिका, दधि-सुत बाहन देख्यौ ।
दधि-सुत बाहन बचन सुनत तुव, अंग-अंग अबरेख्यौ ॥६४७॥
ससि कौ भ्रात कहत ता बाहन, कुंद कुसुम ललचात ।
खंजन सदृस देख तुव अँखियाँ, तन-मन मैं अकुलात ॥६४८॥
मारुत, सुरपति-रिपु ता पतनी, ता सुत बाहन बात ।
स्रवन सुनत अकुलात साँवरौ, कछुक कही नहिं जात ॥६४९॥
चतुरानन सुत ता सुत पतनी, ता सुत कौ जो दास ।
ता सुत वाहन पुत्र अंग धरि, जल-सुत करौं प्रकास ॥६५०॥
श्री बलदेव रास[1] जे कहियै, तामैं भानु मिलाय ।
ताकी सुता कहत चतुरानन, निगम सदा गुन गाय ॥६५१॥
सिंधुसुता तुव भाग्य बिलोकत, मन मैं रही लजाय ।
काम-पिता-माता-गुरु ता बपु, जुबति कोटि दरसाय ॥६५२॥
एतौ[2] रास मेल द्वादस मैं,[3] ऐसै बीतत जाम ।
दुतिय रास मैं[4] मिलत सप्तमी, सो जानत निज धाम ॥६५३॥
सैल-सुता धरि ता रिपु बाँधत, अंग-अंग पिय आज ।
कोटि जतन कर सींचत तौऊ, मिटत नहीं ब्रजराज ॥६५४॥
बायस अजा सब्द मनमोहन, रटत रहत दिन-रैन ।
तारापति के रिपु पर ठाढ़े, देखत हैं हरि नैन ॥६५५॥
गंगा-सुत रिपु रिपु सिख मेरी, सुनत नहीं सखि काहू ।
नारायन-सुत ता सुत ता सुत, लगत विषम विष ताहू ॥६५६॥
जल-सुत बाहन देख बदन तुव, ब्रह्म-सुता अकुलानी ।
मंगल मात तासु पति बाहन, राजत सदृस भुलानी ॥६५७॥
दक्ष प्रजापति की तनया पति, ता सुत नार गई ।
सिंधुसुता-सुत बाहन की गति, देखत बिषम भई ॥६५८॥
अगिन तात तेहि तात अंगना, त्यौं उनमै[5] तू राखी ।
बंधु कुसुम द्रुम ता रिपु कौ पति, सारंग रिपु कर भाखी॥६५९॥

---

१ राम (न) (बं), २ सातों (रा), ३ तेतो रास मेल द्वादशमाँ (गु), ४ राख माँ (गु), ५ उर में (रा)

पति पाताल लगन तन धारन, सो सुख भुजा बिचारी ।
प्रथम मथत जलनिधि जा प्रगट्यौ, सो लागत सब नारी ॥६६०॥
वधु कुमुद पति पिता सुता जो, तुव जस मधुरे गावै ।
ब्रह्म-सुता सुत पद-रज परसत, सारंग सुता दिखावै ॥६६१॥
इंद्र-सुता पति भुजा लगन लखि, जल-सुत हृदय लगावै ।
इंद्र-सुता तनया पति कौ सुत, ताके गुनै न पावै ॥६६२॥
धरत कमल मैं कमल कमल कर, मधुर बचन उच्चार ।
कमला बाहन गहत कमल सौं, कमलन करत बिचार ॥६६३॥
कालिंद्री-पति नैन तासु सुत, लागत हैं सब लोग ।
इंद्र मात तेहि तात सो सरधत, प्रगट देखियत भोग ॥६६४॥
अंबुज मात तात पति ता रिपु, ता पति काम बिगारे ।
तातैं सुन तू भाननंदनी, मेरौ बचन बिचारे ॥६६५॥
तीस भान, द्वै मास, सकल रितु, सिंधु-सुता सम जान ।
भूपन[1] अंग लसत गुंजावलि, और न कछू समान ॥६६६॥

(इति दृष्टकूट सूचनिका संपूर्ण)

कबहुँक सेज रचत बेदी कर, हृदय होम घृत[2] नैन ।
बिप्रभोज बालन[3] तुव देखियत, अंग कुसुम[4] नहिं चैन ॥६६७॥
अब तू बेगि बिचार बचन मम, सुन वृषभान-कुमारि ।
मिल हो बेग कमल-दल-लोचन, सुन मेरी मनुहारि ॥६६८॥
गौर बरन ह्वै जात साँवरौ, ध्यान करत तुव अंग ।
पुन ललिता हरि के ढिग आई, जहाँ बैठे साँवल रंग ॥६६९॥
बेग चलो तुम स्याम मनोहर, आपु काज महा काज ।
लेहु मनाय प्रान-प्यारी कौं, प्रगट्यौ कुंज-समाज ॥६७०॥
रितु बसंत अब आय देखियत, फूले कुसुम सुरंग[5] ।
मानौ मदन बसंत मिले दोऊ, खेलत हैं रस-रंग ॥६७१॥
बेग चलो अब प्रिया मनावन, नैंक बिलंब न लाओ ।
मेरी कही बात नहिं मानत, ताकौं[6] ज्ञान दृढ़ाओ ॥६७२॥

---

१ भूपन (रा), २ घूम (गु), ३ बोलन (रा), ४ कूस (रा)) (बं), ५ कुरंग (रा), ६ बाकौं (न) (बं)

परौ[१] पाँय अपराध छिमावत, सुनत मिलैगी धाय ।
सुनत बचन दूतिका-बदन तें, स्याम चले अकुलाय ॥९७३॥
जहाँ बैठी वृषभान-नंदनी, तहाँ आये धरि मौन ।
परे पाँय हरि, चरन परस करि, छिम अपराध सलौन ॥९७४
सुनि हरि-बचन बिलोकत सोभा, मान गयौ सब छूट ।
मिले धाय अकुलाय स्यामघन, प्रेम काम रस लूट ॥९७५॥
रच्यौ सिंगार स्याम अपने कर, नख-सिख प्रिया बनायौ ।
सीसफूल-बैनी-नकबेसर, तिलक भाल करवायौ ॥९७६॥
जुग तार्टक, चिबुक, दसनावलि, कर कंकन, उर माल ।
नूपुर पद, कटि छुद्र घंटिका, सब शृंगार रसाल ॥९७७॥
सकल सिंगार करत बरनन कौं, कृपा जथा मति मोर ।
होत बिलंब मिलन के कारन, तातैं बरनत थोर ॥९७८॥

विहार लीला

चले धाय नवकुंज दोऊ मिल, किसलै-सेज बिराजे ।
परिरंभन सुख-रास, हास मृदु, सुरति-केलि सुख साजे॥९७९॥
नाना बंध बिबिध रस क्रीड़ा, खेलत स्याम अपार ।
रति रस तत्व भेद नहिं जानत, दंपति अंग सँभार ॥९८०॥
सुरति समुद्र[३] मगन दंपति रस, झूलत[४] अति सुख झेल ।
निरबधि रमन, अपरिमित अच्युत, मनुज माँय बहु खेल ॥९८१॥
नूपुर संचित किंकिन की धुनि, सुनत मधुर किलकार ।
मदन-सिंधु मधुमत्त मधप गन, फूले करत गुंजार ॥९८२॥
मधुप-जूथ मिलि सबन चंद्रमा, तड़ित लिये आकास ।
खंजन-मीन बजावत-गावत, निरतत सुख सु विलास ॥९८३॥
जलद-समूह खसत उडुगन गन, पै समुद्र के बीच ।
मकर कपोल बोल मृदु कोकिल, अमित[५] सुधारस सींच ॥९८४॥
मोहन बेल सिंगार बिपट सौं, उरझी आनँद बेल ।
कंचन बेल तमालै लपटी, रसिक रंग भरि रेल ॥९८५॥

---

१ परी (बं), २ रस (बं) ३ सरुद्र (बं), ४ झेलत (रा) (न) (बं), ५ अमृत (गु) (न) (बं)

जुगल कमल सौं मिलत कमल जुग, जुगल कमल लै संग ।
पाँच कमल मधि जुगल कमल लखि, मनसा भई अपंग ॥६८६॥
किरन कदंब मंजुका पूरन, सौरभ उड़त अबेस ।
अगर-धूप-सौरभ नासा सुख, बरषत परम सुदेस ॥६८७॥
कुंद-कुमुद[1]-बंधूक मिलत पुनि, मीन देख ललचात ।
ता पर चंद देख संज्ञासुत, तन मैं बहुत रिझात[2] ॥६८८॥
बरनाभूपन[3] मैं अबिलोकत· केस-पास कृत बंध ।
अधर-समुद्र सदल जो सहसा, धुनि उपजत सुख फंद[4] ॥६८६॥
मुदित मराल मिलत मधुकर सौं, खंजन मिलत कुरंग ।
कीर कीर रनधीर मिलत सम, रति-रस लहर तरंग ॥६६०॥
सुरत-समुद्र कहति दंपित कैं, निरवधि रमन अपार ।
भयौ सेष मन मूढ़, कहनि कौं राधा-कृष्ण बिहार ॥६६१॥
सोभा अमित अपार अखंडित, आप आतमाराम ।
पूरनब्रह्म प्रगट पुरुषोत्तम, सब बिधि पूरन-काम ॥६६२॥
आदि, सनातन, एक, अनूपम, अबिगत–अल्प–अहार ।
ओंकार, आदि बेद[5], असुर-हन, निरगुन, सगुन अपार ॥६६३॥
चतुरानन, पंचानन अरु पुन, षट-आनन सम जान ।
सहसानन, बहु-आनन गावत, पार न पायौ बखान ॥६६४॥
सघन कुंज मैं अमित केलि लख, तन सुगंध की रेल ।
मधुकर निकट आय पीवत रस, सुखद सदा रस झेल ॥६६५॥
मलिन भये रस मानसरोवर, मुनि जन मानस हंस ।
थकित बिलोक सारदा बरनन, करबे बहुत प्रसंस ॥६६६॥
वृंदाबन निज धाम परम रुचि, बरनन कियौ बढ़ाय ।
ब्यास पुरान सघन कुंजन मैं, जब सनकादिक आय ॥६६७॥
धीर समीर बहत तेहि कानन, बोलत मधुकर मोर ।
प्रीतम प्रिया बदन अबिलोकत, उठि-उठि मिलत चकोर ॥६६८॥

---

१ मुकुंद (शु), २ डरात (न) (बं), ३ भख कर (रा) (न) (बं), ४ध समुद्र शत दल जो सहस्र पुन, उपजत है सुख फंद (रा). ५ अदवेत (रा)

अमित एक उपमा अबिलोकत, जिय मैं परत बिचार ।
नहिं प्रबेस अज-सिब-[1] गनेस, पुनि कितक बात संसार ॥९९९॥
सहस्र रूप बहु रूप रूप पुनि, एक रूप पुनि दोय ।
कुमुदकली बिगसित अंबुज मिलि, मधुकर भागी सोय ॥१०००॥
नलिन पराग मेघ माधुरि सौं, मुकुलित अंब-कदंब ।
मुनिमन-मधुप सदा रस लोभित, सेबत अज-सिब-अंब ॥१००१॥
गुरु-प्रसाद होत यह दरसन, सरसठ बरस प्रबीन ।
सिब बिधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन[2] ॥१००२॥
सुख परियंक अंक ध्रुव[3] देखियत, कुसुम-कंद द्रुम छाये ।
मधुर मल्लिका कुसुमित कुंजन, दंपति लगत सोहाये ॥१००३॥
गोबर्धन गिरि रतन सिंहासन, दंपति रस सुख मान ।
निबिड़ कुंज जहाँ कोऊ न आवत, रस बिलसत सुख खान ।१००४
निसा-भोर कबहूँ नहिं जानत, प्रेम-मत्त अनुराग ।
ललितादिक सींचत सुख नैनन, जुर सहचरि बड़ भाग ॥१००५॥
यह निकुंज कौ बरनन करिबे, बेद रहे पचि हार ।
नेति-नेति कर कह्यौ सहस बिधि, तौऊ न पायौ पार ॥१००६॥
दरसन दियौ कृपा कर मोहन, बेगि दियौ बरदान ।
आगम कल्प रमण तुव ह्वै है, श्री मुख कही बखान ॥१००७॥
सो स्रुति रूप होय ब्रजमंडल, कीनौ रास--बिहार ।
नवल कुंज मै अंस बाहु धरि, कीन्हीं केलि अपार ॥१००८॥
पुनि ऋषि रूप राम-बर पायौ, हरि से प्रीतम पाय ।
चरन–प्रसाद राधिका देवी, उन हरि कंठ लगाय ॥१००९॥
वृंदावन–गोबर्धन कुंजन, जमुना–पुलिन सुदेस ।
नित प्रति करत बिहार मधुर रस, स्यामा-स्याम सुबेस ॥१०१०॥
निरखि-निरखि सुख दपति कौ यह, कबि-कुल सब पचिहारे ।
भूपन खसे सुरति वस दोऊ, केस न आप संबारे ॥१०११॥

---

१ ईस (रा), २ बिधाता तप करचो बहु दिन, ताहु पार न लीन्ह(रा), ३ ध्रुव (रा)

(राग-रागिनी वर्णन)

ललिता ललित बजाय रिझावत, मधुर बीन कर लीने ।
जान प्रभात राग पंचम, षट, मालकोष रस-भीने ।।१०१२।।
सुर हिंडोल, मेघ, मालव पुनि, सारंग सुर, नट जान ।
सुर सावंत, भूपाली, ईमन, करत कान्हरौ गान ।।१०१३।।
ऊँच अड़ाने के सुर सुनियत, निपट नायकी[1] लीन ।
करत बिहाग[2], मधुर केदारौ, सकल सुरन सुख दीन ।।१०१४।।
सोरठ, गौड़, मलार सुहावन, भैरव ललित बजायौ ।
मधुर बिभास, सुनत बेलाबल, दंपति अति सुख पायौ ।।१०१५।।
देवगिरी, देसाक, देव पुन, गौरी, श्री सुखरास ।
जैतश्री अरु पूर्वी[3], टोड़ी, आसाबरी सुखरास ।।१०१६।।
रामकली, गुनकली, केतकी, सुर सुघराई गाये ।
जैजैबंती जगत-मोहनी, सुर सौं बीन बजाये ।।१०१७।।
सूआ सरस मिलत प्रीतम, सुखसिंधु बीररस मान्यौ ।
जान प्रभात प्रभातो गायौ, भोर भयौ दोउ जान्यौ ।।१०१८।।

सुरतांत

जागे प्रात निपट अलसाने, भूषन सब उलटाने ।
करत सिंगार परसपर दोऊ, अति आलस सिथलाने ।।१०१९।।
जाल-रंध्र ह्वै सहचरि देखत, जन्म सुफल करि लेखैं ।
जान प्रभात उछंगन दंपति, लेत प्रान-रस पेखैं ।।१०२०।।
औट्यौ दूध कपूर मिलायौ, लै ललिता तहाँ आई ।
पहिलै स्यामा कूँ अँचवायौ, पाछै पिवत कन्हाई ।।१०२१।।
करि शृंगार सघन कुंजन मैं, निस-दिन करत बिहार ।
नीराजन बहु बिधि बारत हैं, ललितादिक ब्रज-नार ।।१०२२।।
कबहुँक केलि करत जमुना-जल, सुंदर सरद-तड़ाग ।
कबहुँक मधुर माधुरी झूलत, आनंद अति अनुराग ।।१०२३।।

---

१ नायिका (गु), २ बिहार (गु) (न) (बं), ३ पुरिया (रा)

बसंत-खेल

प्रथम बसंत पंचमी सुभ दिन, मंगलचार बधाये ।
पंचानन जारचौ मनमथ, सो प्रगट भयौ, फिरि आये ॥१०२४॥
जसुमति मान बधाई बाँटत, फूली अंग न समाई ।
उबटि न्हवाय स्यामसुंदर कौं, आभूषन पहिराई ॥१०२५॥
घर-घर तैं आईं ब्रज-सुंदरि, मंगल-साज सँवारे ।
हेम-कलस सिर पर धरि पूरन, काम-मंत्र उच्चारे ॥१०२६॥
अबिर-गुलाल-अरगजा-सौधौ, लीन्ही सौंज बनाय ।
मन मैं किये मनोरथ बहु बिधि, मिलवत सब मनभाय ॥१०२७॥
भीर जानि सिहपौर त्रियन की, जसुमति भवन दुराई ।
ढूँढ सकल त्रिय, दौर माल कौं पकरि बाँह लै आई ॥१०२८॥
केसर, चंदन और अरगजा, सीस महर के नाये ।
जो-जो बिधि उपजी जाके जिय, सोई-सोई भाँति कराये ॥१०२९।
फगुवा दियौ महर मन भायौ, जसुमति परम उदार ।
पकर लिये घनस्याम मनोहर, भेंटे भरि अँकवार ॥१०३०॥
पहिली जान बसंत पंचमी, जसुमति बहुत खिलाये ।
केसर, चोवा और अरगजा, स्याम अंग लपटाये ॥१०३१॥
ता पाछै गोपिन नें छिरके, कनक-कलस भरि डारे ।
मानौं सीस तमाल अमृतघन, सरस सुधानिध रारे ॥१०३२॥
चंदनचोबा मथत हाथ कर, नील जलद तन अरप्यौ ।
मानौं प्रगट करी अपने चित, पिय कौं प्रान समरप्यौ ॥१०३३॥
किये मनोरथ नाना बिधि के, मेवा बहु बिधि लाई ।
सो हरि नें स्वीकार कियौ सब, निरखि परम सुख पाई ॥१०३४॥
सुबल-सुबाहु-तोक-श्रीदामा, सकल सखा जुरि आये ।
रतनचौक मैं खेल मचायौ, सरस बसंत बधाये ॥१०३५॥
करत परस्पर गोपि-ग्वाल मिलि, क्रीड़ा अति मनभाई ।
सुरँग अबीर-गुलाल उड़ावत, रह्यौ गगन सब छाई ॥१०३६॥
फगुवा दैन कह्यौ मनभायौ, सबै गोपिका फूलीं ।
कंठ लगाय चलीं प्रीतम कौं, अपने गृह अनुकूलीं ॥१०३७॥

करत आरती बिविध भाँति सौं, जसुमति परम सुहाई।
सखा बृंद सब चले जमुन-तट, खेलत कुँवर कन्हाई ॥१०३८॥
बैठे जाय सघन कुंजन मैं, जमुना–तीर गोपाल।
सखी एक तहाँ आय निकट ही, बोली बचन रसाल ॥१०३९॥
बृंदावन फूल्यौ नँदनंदन, सघन कुंज बहु भाँत।
हरित-पीत[1] मुकुलित द्रुम-पल्लव, मुखरित मधुकर-पाँत ॥१०४०॥
ठौर-ठौर झिल्ली धुनि सुनियत, मधुर मेघ गुंजार।
मानौं मन्मथ मिलि कुसुमाकर, फूले करत बिहार ॥१०४१॥
अपनौ सब गुन तुम्हें देखावन, मदन[2] बसंत मिलि आयौ।
मधुर माधुरी मुकुलित पल्लव, लागत परम सोहायौ ॥१०४२॥
गोबर्धन के सिखर सुभग पर, फूले कुसुम पलास।
सहज सुरत सुख देत संजोगिन, बिरहिन करत उदास ॥१०४३॥
पुहुप-पराग परस मधुकर गन, मत्त करत गुंजार।
मनौं कामि जन देखि जुबति जन, विषयासक्त[3] अपार ॥१०४४॥
बीथिन विपिन बिलोकि बिबिध मन, मंडित कुसुमित कुंज।
मनहुँ हेम-मंडपिका मुखरित, कल्पलता रस-पुंज ॥१०४५॥
बेग चलो बृंदाबन-नायक, राधा मारग जोवत।
हिलिमिल खेलो मन्मथ-क्रीड़ा, क्यों बसंत दिन खोवत ॥१०४६॥
सुनत बचन ललिता के, मोहन तुरत चले उठि धाय।
कियौ बसंत खेल बृंदाबन, अदभुत फागु मचाय ॥१०४७॥
लता-लता, बन-बन, कुंजन मैं, खेलत फिरत बसंत।
मनहुँ कमल-मडल मैं मधुकर, बिहरत हैं रसमंत ॥१०४८॥
उत स्यामा, इत सखा मंडली, उत हरि, इत ब्रजनार।
मनौं तामरस पारस खेलत, मिल मधुकर गुंजार ॥१०४९॥
खेल बसंत बहुत सुख मान्यौ, हरषे गोपी–ग्वाल।
बिहँसि गये ब्रजराज भवन सब, चंचल नैन बिसाल ॥१०५०॥

---

१ हरि प्रतीत (गु) (न) (बं), २ स्मर (गु) (न) (बं), ...नक्त आसक्त (रा)

होलिकोत्सव (दैनिक क्रम से)

होरी-डांड़ौ दिवस जानिकै, अति फूले ब्रजराज ।
बैठे सिंहद्वार पै आपुन, जुरिकैं गोप–समाज ॥१०५१
बिप्र बुलाय बेद-बिधि करिकैं, होरी–डांड़ौ रोप ।
आनंदे सब गोप–मंडली, मन्मथ कियौ प्रकोप ॥१०५२।
परिबा प्रथम दिबस होरी कौ, नंदराय गृह आई ।
सकल सौंज गोपी कर लैकै, खेलन कौं मन भाई ॥१०५३
दुइज दुहूँ दिसि होरी माची, सुरंग गुलाल उड़ायौ ।
मनौं अनुराग दुहुन के अंतर, सबहिन प्रगट करायौ ॥१०५४।
तीज तरुनि मिलि पकरे मोहन, गहिकर अंजन दीनौ ।
मनु मधुकर[1] बैठ्यौ अंबुज पर, मुखरित है सुरभीनौ ॥१०५५।
चंपकलता चौथ दिन जान्यौ, मृगमद सोर लगायौ ।
मनहुँ नील जलधर के ऊपर, कृष्णागर लपटायौ ॥१०५६.
पाँचैं प्रमदा परम प्रीति सौं, केसर छिड़की घोर ।
मनहुँ सुधानिधि बरसत घन पर, अमृत-धार चहुँ ओर ॥१०५७
छठ छै रागिनी गाय रिझावत, अति नागर बलबीर ।
खेलत फाग संग गोपिन के, गोप-बृंद की भीर ॥१०५८।
सातैं सजि[2] सुगंध सब सुंदरि, लै आईं उपहार ।
बल-मोहन कौं हँसत खेलावत, रीझि भरत अँकवार ॥१०५९।
आठैं अति आतुर अबला प्रिय, चुंबन दीन्हौं गाल ।
नाना बिधि शृंगार बनाये, बैंदा दीन्हौं भाल ॥१०६०।
नौमी नौसति साजि राधिका, चंद्रावलि ब्रजनार ।
हो-हो करत, पलास कुसुम रँग बर्षत है जो अपार ॥१०६१'
दसमी दसौ दिसा भई पूरित, सुरँग अबीर-गुलाल ।
मनु प्रीतम मिलिवे के कारन, फूले नैन बिसाल ॥१०६२।
एकादसी एक सखी आई, डारचौ सुभग अबीर ।
एक हाथ पीतांबर पकरचौ, छिरकत कुंमकुंम-नीर ॥१०६३।

---

१ मत्त मधुप (गु) (न) (बं). रिझी (गु) रिजि (न) (बं

द्वादसि मची चहूँ दिसि होरी, इत गोपी, उत ग्वाल ।
इत नायक बल-मोहन दोऊ, उत राधा नव बाल ॥१०६४॥
तेरस तरुनी सब मिलिकै, यह कीन्हौं कछुक उपाय ।
तोक-सुवल-मधुमंगल बोल्यौ, सबहिन मतौ सुनाय ॥१०६५॥
चौदस चहूँ दिसा सौं मिलिकै, गठजोरौ गहि भोर ।
मनमोहन पिय दूलह राजत, दुलहिन राधा गोर ॥१०६६॥
देखि कहूँ[1] कुसुमाकर फूल्यौ, मधुप करत गुंजार ।
चद्रावलि केसर लै आई, छिरके नंद-कुमार ॥१०६७॥
सुक्ल पक्ष परिवा पुरुषोत्तम, क्रीड़ा करत अपार ।
हलधर संग सखा सब लीन्हें, डोलत गृह-गृह द्वार ॥१०६८॥
द्वैज दाम कुसुमनि की गूँथी, अपने हाथ सँवार ।
दई पठाय भानु-तनया कौं, पहिरत घोष-कुमार ॥१०६९॥
तीज तरुनि सब गावत आई, नंदराय-दरबार ।
पकरे आय स्याम नट सुंदर, भेंटत भरि अँकवार ॥१०७०॥
चौथ चहूँ दिसि तें सब धाये, सखा मंडली धाय ।
इत तें आई कुँवरि राधिका, होरी अधिक मचाय ॥१०७१॥

(वाद्य यंत्र वर्णन)

पाँचै पंच सब्द करि साजे, सजि बाजित्र अपार ।
रुंज, मुरज, ढप, ताल, बाँसुरी, झालर कौ झंकार ॥१०७२॥
बाजत बीन,[2] रवाब, किंनरी, अमृतकुंडली यंत्र ।
सुर सुरमंडल, जलतरंग मिलि, करत मोहनी मंत्र ॥१०७३॥
बिबिध पखाबज, आवज संचित, बिच-बिच मधुर उपंग ।
सुर सहनाई, सरस सरंगी, उपजत तान-तरंग ॥१०७४॥
कंसताल, कटताल बजावत, शृंग, मधुर मुँहचंग ।
मधुर खंजरी, पटह, प्रनव मिल, सुख पावत रतभंग ॥१०७५॥
निपट नफेरी स्रवनन धुनि सुनि, धीर न रहैं ब्रज-बाल ।
मधुर नाद मुरली कौ सुनिकै, भेंटे स्याम तमाल ॥१०७६॥

---

१ कुहू (रा), २ बीर (गु) (न)

होलिकोत्सव का शेषांश

छठ कौ षटरस सरस बनायौ, हरि भोजन करवायौ ।
नाना विधि पकवान बनायौ, जेंवत अति सुख पायौ ॥१०७७॥
सातैं सखि मिल बीरी लाई, आरोगे ब्रजराज ।
आठैं दिसा सकल मिलि ठाड़ी, दूर करी सब लाज ॥१०७८॥
नौमो नवमत साजि राधिका, हरि सौं खेलत फाग ।
दसमो दसहु दिसा परिपूरन, बाढ्यौ अति अनुराग ॥१०७९॥
एकादसी राधिका–मोहन, दोउ मिलि खेलन लाग ।
बैठे जाय सघन कुजन मैं, जहाँ सहचरि बड़भाग ॥१०८०॥
सघन कुज मैं डोल बनायौ, झूलत हैं पिय-प्यारी ।
ललितादिक बीरी जो खवावत, नाना भाँति सँवारी ॥१०८१॥
अति सुगंध घसि लाय अरगजा, छिरकत साँवल गात ।
हरि प्यारी,[1] प्यारी हरि छिरकत, सोभा बरनि न जात ॥१०८२॥
द्वादस दिवस दुहूँ दिसि माँच्यौ, फागु सकल ब्रज माँझ ।
आलिंगन सब देत स्याम कौं, लखैं न धूँधर-साँझ ॥१०८३॥
तेरस भामिनि पियो अधर-रस, अति आनंद अघाय ।
चहुँ दिसि तैं गहिकै गठजोरौ, कीन्हौं सखियन आय ॥१०८४॥
पून्यौ सुख पायौ ब्रजबासी, होरी हरष लगाय ।
परम राग-अनुराग प्रगट भयौ, अति फूले ब्रजराय ॥१०८५॥
जसुमति माय लाल अपने कौं, सुभ दिन डोल झुलायौ ।
फगुवा दियौ सकल गोपिन कौं, भयौ सबन मनभायौ ॥१०८६॥
जमुना-जल क्रीड़त ब्रजबासी, संग लिए गोबिंद ।
सिंहद्वार आरती उतारत, जसुमति आनँद–कंद ॥१०८७॥

बन-बिहार

यहि बिधि क्रीड़त गोकुल मैं हरि, निज वृंदाबन धाम ।
मधुबन और कुमुदबन सुंदर, बहुलाबन अभिराम ॥१०८८॥
नंदग्राम, संकेत, खिदिरबन, और कामबन धाम ।
लोहबन, माठ, बेलबन सुंदर, भद्र, बृहदबन ग्राम ॥१०८९॥

---

१ बारी (बं),

कृष्ण-चरित्र की परंपरा

चौरासी ब्रज कोस निरंतर, खेलत हैं बल-मोहन ।
सामवेद–ऋग्वेद–यजुर मैं, कह्यौ चरित्र ब्रजमोहन ॥१०९०॥
ब्यास पुरान प्रगट यह भाख्यौ, तंत्र ज्योतिषिन जान्यौ ।
नारद सौं हरि कह्यौ कृपा करि, अमृत बचन प्रमान्यौ ॥१०९१॥
सनकादिक सौं कह्यौ आपु हरि, निज बैकुठ मँझार ।
ब्यासदेव, सुकदेब महामुनि, नृप सौं कियौ उचार ॥१०९२॥
नारायन चतुरानन सौं कहि, नारद भेद बतायौ ।
तातैं सुनिकै ब्यास भागवत, नृप सुकदेब जतायौ ॥१०९३॥
सेष कह्यौ जो सांख्यायन सौं, सुनिकै सनत्कुमार ।
कह्यौ वृहस्पति नें मैत्रे सौं, उद्धव कियौ बिचार ॥१०९४॥
ऐसैं बिबिध प्रमान प्रगट बहु, लीला करि ब्रज-ईस ।
सोई श्री सुकदेब महामुनि, प्रगट कही राधीस ॥१०९५॥

उपसंहार

बृंदाबन हरि यह बिधि क्रीड़त, सदा राधिका संग ।
भोर न निसा कबहूँ जानत हैं, सदा रहत एकरंग ॥१०९६॥
सघन कुंज मैं खेलत गिरिधर, मथुरा की सुधि आई ।
राखे बरजि राधिका रानी, अब न सकोगे जाई ॥१०९७॥
राखौं कंठ लगाय लाल कौं, पलक ओट नहिं करिहौं ।
जुग कुच बीच भुजा दोउन मिलि, सदा प्रेम रँग भरिहौं ॥१०९८॥
सदा एकरस, एक अखंडित, आदि, अनादि, अनूप ।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, विहरत जुगल सरूप ॥१०९९॥
संकरषन के बदन अनल तैं उपजी अगिन अपार ।
सकल ब्रह्मांड तुरत तेज सौं, मानौं होरी दई पजार ॥११००॥
सकल तत्व ब्रह्मांड देव, पुन माया सब बिधि काल ।
प्रकृति-पुरुष, श्री-पतिनारायन, सबहिं अंस गोपाल ॥११०१॥
करम-जोग पुनि ज्ञान-उपासन सब ही भ्रम भरमायौ ।
श्रीबल्लभ गुरु तत्व सुनायौ, लीला-भेद बतायौ ॥११०२॥
ता दिन तैं हरि-लीला गाई, एकलक्ष पद बंद ।
ताकौ सार 'सूर' सारावलि, गावत अति आनंद ॥११०३॥

श्रीनाथ जी का बरदान

तब बोले जगदीस जगत-गुरु, सुनो 'सूर' मम गाथ।
तव कृत मम जस जो गावैगो, सदा रहै मम साथ ॥११०४॥
धरि जिय नेम 'सूर' सारावलि, उत्तर-दक्षिण काल।
मनबांछित फल सबही पावै, गाय[1] मिटै जन्म-जंजाल ॥११०५॥
सीखै, सुनै, पढ़ै, मन राखै, लिखै परम चित लाय।
ताके संग रहत हौ निसि-दिन, आनँद जन्म बिहाय ॥११०६॥
सरस संमतसर लीला गावै, जुगल चरन चित लावै।
गरभ-बास बंदीखाने मैं, 'सूर' बहुरि नहिं आवै ॥११०७॥

(इति श्री सूरदासजी कृत संमतसर लीला तथा सूरसारावली समाप्त)

---

१ (गु)

परिशिष्ट

सेवा–फल

(१)

राग बिलावल

भजो गोपाल, भूल जिन जाउ। मानुष-जन्म कौ, यही है लाउ॥
गुरु-सेवा करि, भक्ति कमाई। कृपा भई, तब मन मैं आई॥
यही[1] देह सों सुमिरो देवा। देह धारि करियै यह सेवा॥
सुनो संत! सेवा की रीति। करै कृपा, मन राखो[2] प्रीति॥
उठिकै प्रात गुरुन सिर नावै। प्रात समै श्री कृष्ण कौं ध्यावै॥
जोई फल माँगै, सोई फल पावै। हरि-चरनन मैं जो चित लावै॥
जिन ठाकुर कौ दरसन कियौ। जीवन जन्म सुफल करि लियौ॥
जो ठाकुर की आरति करै। तीन लोक वाके पाँयन परै॥
जो ठाकुर कौं करै प्रनाम। बैकुंठ है[3] तिनकौ निज धाम॥
जो कोई हरि कौ सुमिरै नाम। ताके सकल पूरन हैं काम॥
जो ठाकुर कौ ध्यान लगावै। ध्रुव-प्रह्लाद की पदवी पावै॥
जिन हरि कौ चरनामृत लियौ। बैकुंठ मैं[4] अपनौ घर कियौ॥
जो हरि आगै बाजित्र[5] बजावै। तीन लोक रजधानी पावै॥
जो जन हरि कौं ध्यान करावै। गर्भ-बास मैं कबहुँ न आवै॥
जो हरि कौ नित करै सिंगार। ताकौ पूरन है अंगीकार[6]॥
जो ठाकुर कूँ दरपन दिखावै[7]। चंद सूरज ताकौं सिर नावै॥
जो ठाकुर कौं तुलसी धरावै[8]। ताकी महिमा कहत न आवै॥
जो ठाकुर कौं कीर्तन सुनावै। ताकौं ठाकुर निकट बुलावै॥
हरि-मंदिर मैं दीपक करै। अंधकूप मैं कबहुँ न परै॥
जो ठाकुर की सेज बिछावै। निज पदवी पाय, दास कहावै॥
जो ठाकुर कौ पलना भुलावै। बैकुंठ-सुख अपने घर ल्यावै॥
जो ठाकुर कौं भुलावै डोल। नित्य लीला मैं करै कलोल॥
उत्सव करि, मन आरती करै। ताके अधीन रहैं श्रीहरै॥

---

१ रही (न), २. राखै (न) ३. विष्णुलोक (न), ४. विष्णुधाम (न)
५. वाद्य (न), ६. स्वीकार (न) ७. जो दर्पन ठाकुरहि देखावै (न)
८ जो ठाकुरहि सु तुलसी चढ़ावै (न)

जो ठाकुर कौं भोग धरावै। वह तौ[1]परम नित आनँद पावै।[2]
जो पद दीन्ह जसोदा मात। ता सुख की कछु कही न जात।
ग्वालन सहित[4]गोपाल जिमावै। सो ठाकुर कौ सखा कहावै॥
जो ठाकुर कौ स्वाद करावै। सो ताकौ फल तब ही पावै॥
गोकुल-गोबर्धन[5] लीला गावै। चरन-कमल कौं तब हो पावै॥
श्री जमुना-जल करै जो पान। सो ठाकुर के रहै निधान॥
जहाँ वैष्णव की मंडली[6]होवै। ताकी संगति नित-प्रति जोवै॥
श्री भागवत सुनै आनँद करि। ताके हृदै बसै नित्य[7] हरि॥
जो ठाकुर कौ देह समरपै। उत्तम सृष्टि[8] जानिकै अरपै॥
जिन हरि की गागरि भरि आनी। तिन बैकुंठ अपनी स्थिति ठानी॥
जो ठाकुर कौ मंदिर लेपै। माया ताकौं कबहुँ न लेपै॥
जो ठाकुर कौ सीधौ बीनै। जितने तीरथ, तितने कीनै॥
जो ठाकुर की माला पोवै। सोई परम भक्त नित होवै॥
जो ठाकुर कौ चंदन लावै। त्रिविध ताप-संताप मिटावै॥
जो ठाकुर के पात्रन धोवै। सदा-सर्वदा निर्मल होवै॥
जो हरि-कीर्तन मुख सौं[9] करै। मुक्ति चार ताके[10]पाँयन परै॥
सेवा में जो आलस करै। कूकर ह्वै कै, फिर-फिर मरै॥
मनसा जो सेवा आचरै। तब ही सेवा पूरी परै॥
सेवा कौ आसरौ[11] करि रहै। दुख-सुख बचन सबही[12] सहै॥
जो सेवा में आलस लावै। सो जड़ जनम प्रेत कौ पावै॥
वेद पुरानन में यौं भाख्यौ। सेवा-रस ब्रज-बीथिन चाख्यौ॥
सेवा की है[13] अद्भुत रीत। श्रीविट्ठलनाथ[14]सौं राखै प्रीत॥
श्री आचार्य प्रभु प्रगट बनाई। कृपा भई तब मन में आई॥
सेवा कौ फल कह्यौ न जाई। सुख सुमिरै श्री बल्लभराई॥
सेवा कौ फल सेवा पावै। 'सूरदास' प्रभु हृदै समावै॥

सदा (न), २. जोई पदवी (रा), ३. यह (रा), ४. ग्वाल मंडली सौं(रा),
गोवरधन की (न), ६. जहाँ समाज वैष्णवी (न), ७. नित ही (न).
श्रेष्ठ (न), ९. सुख (रा), १०. हू (न), ११. आश्रय (न),
२. सवन कौ (न), १३. यह (न), १४. श्री विट्ठलेश (न)

ब्रजभाषा-साहित्य के विद्वान और सूर-साहित्य के विशेषज्ञ—

श्री प्रभुदयाल मीतल कृत

सूर-साहित्य संबंधी नवीन प्रकाशन

हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित होने के पश्चात् इस समय देश-विदेश मे उच्च हिंदी साहित्य के विद्यार्थियों, काव्य-प्रेमियों, विश्व विद्यालयों एव पुस्तकालयों में सूर-साहित्य की बड़ी माँग हो रही है। इसी की पूर्ति के लिए हमने निम्न लिखित नवीन पुस्तकें प्रकाशित की हैं—

१. **सूर-निर्णय** (द्वितीय संस्करण)—यह सूर-साहित्य संवंधी प्रसिद्ध ग्रथ है, जिसमें महात्मा सूरदास के जीवन, ग्रंथ, सिद्धांत और काव्य की निर्णयात्मक आलोचना की गई है। हिंदी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा परीक्षा और क.. विश्व विद्यालयों की एम० ए० परीक्षा में यह पाठ्य ग्रंथ रहा है। इस समय इसका नवीन संस्करण तैयार हुआ है। बड़े आकार के प्राय: ४०० पृष्ठ, सुदर छपाई, बढ़िया कागज, पक्की जिल्द और सूरदास का बहुरंगी प्रामाणिक चित्र। मू. ५)

२. **सूरदास की वार्ता**—गो० हरिराय जी कृत स० १७५२ की प्राचीन प्रति के आधार पर इस महत्वपूर्ण ग्रथ का संपादन किया गया है। इसमे महात्मा सूरदास का प्राचीन एवं प्रामाणिक जीवन वृत्तांत है। परिशिष्ट में ब्रजभाषा गद्य के विकास और ह्रास का शोधपूर्ण विवरण है। पाद-टिप्पणियों और अनेक चित्रों के कारण पुस्तक का महत्व बढ़ गया है। मू० १॥)

१. **सूर-विनय-पदावली**—सूरदास कृत विनय, दीनता, पश्चाताप, वैराग्य, आत्मज्ञान, माया, अविद्या, आत्मप्रबोध आदि के २८० पदों का सुसंपादित सकलन। अंत में सूर-विनय का शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक विवेचन भी है। मू० १॥)

४. **सूर-रामचरित्र**—सूरदास का कृष्ण-काव्य प्रसिद्ध है, किंतु इस पुस्तक में उनके रामचरित्र संबंधी पदों का संकलन है। ये पद सूरसागर, सूर-सारावली और वर्षोत्सव कीर्तन से संगृहीत किये गये है। विद्वत्तापूर्ण परिशिष्ट और खोजपूर्ण प्राक्कथन से पुस्तक की उपयोगिता बढ़ गई है। मूल्य १॥)

५. **सूर-बालकृष्ण-पदावली**—श्री कृष्ण के बाल्य वर्णन के लि० सूरदास जी जगत् विख्यात हे। इस पुस्तक में उनके बाल-लीला संबंधी ३०ए सर्वोत्तम पदों का लीलाक्रम के अनुसार संकलन है, जो हिंदी साहित्य में प्रथम वार प्रकाशित हुआ है। विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना और सूरदास के रगीन चित्र सहित। मू० १॥)

मिलने का पता— **अग्रवाल प्रेस, मथुरा.**

हिंदी भक्ति-साहित्य के महत्वपूर्ण प्रकाशन—

भक्त-कवि व्यास जी

लेखक : वासुदेव गोस्वामी :: संपादक : प्रभुदयाल मीतल

सूरदास जी के समकालीन सुप्रसिद्ध भक्त-कवि महात्मा हरिराम जी व्यास की रचनाएँ साहित्य-प्रेमियों में सदा से सुप्रसिद्ध है। इस पुस्तक के प्रथम खंड में व्यास जी के जीवन-वृत्तांत की खोजपूर्ण समीक्षा और द्वितीय खंड मे उनकी समस्त रचनाओं का सुसंपादित संकलन है। व्यास जी के वंशज श्री वासुदेव जी गोस्वामी ने अनेक वर्षों के खोजपूर्ण अध्ययन के उपरांत इस मौलिक एव विद्वतापूर्ण ग्रंथ की रचना की है।

व्यास जी की कविता ब्रजभाषा भक्ति-साहित्य का शृंगार है, किंतु हिंदी जगत् में इसका यथार्थ मूल्यांकन नही हो सका है। इस ग्रंथ में प्रथम बार व्यास जी के काव्य और उनके संगीत की मार्मिक आलोचना की गई है। व्यास जी संबंधी दुष्प्राप्य प्राचीन चित्र, अनुक्रमणिका और विद्वत्तापूर्ण भूमिका ने ग्रंथ का और भी महत्व बढ़ा दिया है। इस अपूर्व प्रकाशन से हिंदी साहित्य की गौरव-वृद्धि होगी, इसमें संदेह नहीं।

बड़े आकार के ४८६ पृष्ठ, सुंदर छपाई, सचित्र और सजिल्द, मूल्य ६)

अष्टछाप-परिचय

[संशोधित एवं परिवर्धित द्वितीय संस्करण]

लेखक : प्रभुदयाल मीतल :: भूमिका-लेखक : डा० वासुदेवशरण

इस अपूर्व ग्रंथ में ब्रजभाषा साहित्य के आरंभिक आठ कवि—

(१) सूरदास, (२) कुंभनदास, (३) परमानंददास, (४) कृष्णदास (५) गोविंदस्वामी, (६) छीतस्वामी, (७) चतुर्भुजदास, (८) नंददास के आलोचनात्मक सचित्र जीवन वृत्तांत और उनकी दुर्लभ रचनाओं के प्रामाणिक संकलन है। सूरदास और नंददास के अतिरिक्त अन्य कवियों की बहुत कम रचनाएँ प्रकाश में आई हैं, किंतु इस ग्रंथ में आठों कवियों की सैंकड़ों दुष्प्राप्य रचनाओं का संग्रह किया गया है।

पुस्तक के आरंभ में अष्टछाप की पृष्ठभूमि स्वरूप वल्लभ संप्रदाय एवं उसके आचार्यों का खोजपूर्ण विवरण है, जो हिंदी साहित्य में सर्वथा नवीन सामग्री है। हिंदी साहित्य सम्मेलन की उत्तमा और कई विश्वविद्यालयों की एम. ए. परीक्षा के लिए यह पाठ्य ग्रंथ रहा है।

बड़े आकार के ४०० पृष्ठ, सुंदर छपाई, सचित्र और सजिल्द, मू० ५)

मिलने का पता—**अग्रवाल प्रेस, मथुरा।**